

क्लियर फंडा

हिंदी साहित्य निकेतन, बिजनौर

क्लियर फंडा

(व्यंग्य संग्रह)

महेशचंद्र द्विवेदी

हिंदी साहित्य निकेतन, बिजनौर

प्रकाशक · **हिन्दी साहित्य निकेतन**
16 साहित्य विहार
बिजनौर (उ प्र)
टाइप सैटिंग : अनुभूति ग्राफिक्स बिजनौर (उ प्र.)
आवरण : राम गर्ग एव दीपक अग्रवाल
मुद्रक · आदर्श प्रिंटर्स, दिल्ली 32
सस्करण · प्रथम 2000
मूल्य · एक सौ रुपये

CHAR FANDA (SATIRES) BY MAHESH CHANDRA DWIVEDI
ISBN-81-85139-60-1
Rs 100 00

समर्पण

स्व शंभूदयाल दुबे (पिता) की स्मृति में

एवं

श्रीमती पानकुँवर दुबे (माता) के चरणों मे

व्यंग्य और वयंग

एक उर्दूदाँ मित्र ने एक दिन मुझसे पूछा था कि सुना है आजकल आप वयंग लिख रहे है। पहले तो बात मेरी समझ मे नही आई थी पर चूँकि मैं मित्र के हिंदी-ज्ञान की सीमा से भिज्ञ था, अत: शीघ्र उनका अर्थ समझकर मैंने मुस्कराकर कहा, 'वयंग नहीं व्यंग्य'। मित्र झुँझलाहट से बोले, 'हाँ, हाँ! वही कह रहा हूँ वयंग।' यह सुनकर मुझे हँसी तो आई ही, साथ ही कुछ हास्य रचनाएँ हिंदी के बजाय उर्दू में लिखने की प्रेरणा भी मिली। इस सग्रह में भी 'नाचीज़ रकीब' व 'फ़ितरत-ए-मौत' में उर्दू के शब्दों का बड़ी फ़राख़दिली से प्रयोग किया गया है। 'फितरत-ए-मौत' को नए शेख़चिल्ली की कहानी भी कहा जा सकता है। हिंदी की रचनाएँ जैसे 'डाकिनी' व 'अध्यक्षता एक कविसम्मेलन की' आदि भी हास्य की श्रेणी में रखी जा सकती हैं।

सग्रह की व्यंग्य-रचनाएँ एक तरह से मेरे दिल की भड़ास है— समाज में व्याप्त अज्ञान एवं पाखंड, राजनीति में व्याप्त भ्रष्टाचार एव तिकड़मबाजी तथा प्रशासन में व्याप्त चापलूसी एवं धनलिप्सा आदि ऐसे तथ्य है, जो किसी भी सवेदनशील व्यक्ति की आत्मा को दिन-रात कचोटते रहते हैं। संभवत: उनके निराकरण की असमर्थता के बोध ने ही व्यग्य-रचनाएँ लिखने-हेतु मुझे प्रेरित किया होगा। मुझे लगता है कि इन्हे पढकर पाठकों को भी ऐसा लगेगा कि यही तो घटित हो रहा है हमारी आँखों के सामने, पर न चाहते हुए भी हम इनका विरोध करने के बजाय इन्हीं की धारा मे क्यों बहने लगते है!

यद्यपि ये व्यंग्य किसी व्यक्ति-विशेष को लक्ष्य करके नहीं लिखे गए है तथापि यदि किसी घटना-विशेष के परिप्रेक्ष्य में किसी को ऐसा प्रतीत होता है, तो मैं उनसे अनुरोध करूँगा कि अपनी विशालहृदयता का परिचय देकर उसे 'वयंग' भाव से लेंगे।

मैं अपनी पत्नी नीरजा द्विवेदी का आभारी हूँ, जिन्होंने स्वयं लेखिका होते हुए भी दूसरे लेखक की (मेरी) इन रचनाओ को ध्यानपूर्वक सुना व सुधारहेतु सुझाव दिए। इन रचनाओं को आपके समक्ष पुस्तक रूप में लाने हेतु मैं डा.गिरिराजशरण अग्रवाल का आभारी हूँ। इन रचनाओं के टंकन में श्रीमती आरती चतुर्वेदी एवं कु. ऋचा पारस का सहयोग प्रशंसनीय रहा है।

मैं कादंबिनी, मनोरमा, पुरवाई, पुलिस पत्रिका आदि के संपादकों का, जिन्होंने इनमें कई रचनाओं को अपनी पत्रिकाओं में स्थान दिया, भी आभार प्रकट करता हूँ।

16, गौतमपल्ली,
लखनऊ (उ.प्र.)

महेशचंद्र द्विवेदी

कुछ शहद, कुछ तेज़ाब

चुनाचे जनाब, इसे कहते हैं– ज़िंदादिली! अभी तक हम व्यग्यवाले सखि-सखा पुलिसवालो पर व्यग्य की बंदूक़ तानते थे। वक्त के साथ बदूक घूम गई। पुलिस का एक शीर्षस्थ अधिकारी व्यंग्य रच रहा है। वह भी पुख़्ता, मज़बूत और मस्त-मस्त! महेश जी मेरे प्राचीनकाल से परिचित है, मगर मैं आज तक न जान पाया कि पुलिस अफसर की वर्दी-तले व्यग्य महफूज है। पुरानी देसी कहावत– एक तो बाघ, ऊपर से बंदूक बॉधे! कमाल है, भय्ये!

अब जरा माल पर आइए! 'नाचीज़ रकीब' में क्या धारदार लखनवी जबान है, जिस पर मेरे अग्रज स्व. अमृतलाल शैदा थे। मैं शैदा हूॅ। क्या महीन छीला है कि नाज़ुनीनों की ॲगुलियॉं मात। 'कलियुग की कौतुक कथा' में नया पैतरा है। महाभारत से लेकर व्यग्य के चीरहरण तक का हुनर! 'इंग्लिदी' में ॲग्रजी ओवरकोट और भारतीय ॲगोछे जैसा टकराव। गोदे का गेहुएॅ हिदुस्तानी पर तीखा भाषाई और सास्कृतिक प्रहार! 'जन्मसिद्ध अधिकार' में निजी आजादी की भरपूर बखिया उधेड़ी गई है! 'सरदार जी का बगीचा' में मानवीय मूल्यों और स्नेह का सुदर्शन रूप। पारदर्शिता' मे पारदर्शिता का रूप आरपार उकेरा है। और भी बहुत कुछ है। मगर बोहनी के समय ही कोई पूरा टोकरा नही खोल देता! परत-दर-परत खुलता है, जनाब।

महेश भाई के व्यग्यो मे हरिशंकर परसाई वाला तीखे प्रहार का घराना भले न हो, शरद जोशीनुमा शब्दो से खेलने वाला जादू न हो

मगर, क्षमा करें, के.पी. सक्सेना वाला सहला-सहला कर टीपे मारनेवाला हुनर है। आप इसे बड़बोलापन न समझें! सिर्फ चाकू की नोक चुभाना ही व्यंग्य का धर्म नहीं, सलीके से सहलाकर मरहम रखना भी व्यंग्य की जिम्मेदारी है! महेश भाई की कुछ पेशेवराना मजबूरियाँ भी है। एक उच्चस्थ पुलिस अधिकारी सत्ता, शासन और सड़ी हुई राजनीति को उतना सड़ा नहीं कह सकता, जितना मैं कह लेता हूँ। नई दुल्हन कितनी भी कर्राट हो, ज़्यादा चिम्टा नहीं बजाती! फिर भी भाषा, शैली और संप्रेषण को देखकर एक आस ज़रूर जागती है कि 'बटन-बिल्लो' की दासता से आजाद होकर व्यंग्य का यही शहद धीरे-धीरे तेज़ाब और तीखा तेज़ाब हो जाएगा। यही होता आया है।

काफ़ी कुछ लिखा-छपा जाने पर भी व्यंग्य-आई मीन शिष्ट व्यंग्य विशेषरूप से गद्य-व्यंग्य-की बिरादरी अभी बहुत छोटी है। ज़बरदस्त परिवार नियोजन चल रहा है! ऐसे गुदगुदाने-लहरानेवाले आँगन में कोई आता है, तो ढोलक की थाप गूँजना लाज़मी है। महेश भाई के इस संग्रह का स्वागत होगा, बलाएँ ली जाएँगी, मेरा विश्वास है। पहली कुश्ती में ही अखाड़े में कोई गुरु हनुमान नहीं हो जाता। रगपुट्ठे और दाँव निकालने में वक़्त लगता है। थोड़ी शह दें आप फिर देखें तेवर। मेरी मंगलकामनाएँ! ... बस।

लखनऊ (उ.प्र) **के.पी. सक्सेना**

व्यंग्य-क्रम

एक अनोखा क्यू

मैंने अपने जीवन मे कभी एसा अनोखा क्यू नहीं देखा है, जैसा आज देख रहा हूँ। यद्यपि यह क्यू पहले से लगा हे परतु अपने ही खयालो मे मस्त मै इसे अभी तक नहीं देख सका था। कितना लंबा है यह क्यू कि आगे टिकट-विंडो दिखाई नही दे रही है और पीछे भी लगातार लोग इसमे लगते चले जा रहे हैं। मै भी इस क्यू मे लगा हूँ, यद्यपि क्यू मे लगकर अपना टिकट कटाने की मेरी कोई चाह नहीं है। टिकट कटाकर उस पार का शो देखने जाने के बाद कोई व्यक्ति मुझे वापस आता दिखाई नहीं द रहा है। सभवत: शो बहुत लंबा है अथवा इतना रुचिकर है कि लोग एक बार के टिकट पर वहाँ का शो लगातार देखते रहना चाहते है।

मै देख रहा हूँ कि क्यू मे मेरे पीछे पान चबाती एक क्षीणकाय वृद्धा लगी हुई है। दमा और तपेदिक की मरीज़ मालूम हो रही है। उसे खड़ा होना दूभर हो रहा है, इसलिए मैंने शिष्टाचार के नाते अपनी जगह छोडकर उन्हें अपने से आग लग जाने को कहा, तो मुझे खा जानेवाली निगाहो से देखकर बोली, 'तुमसे आगे लगे मेरी जूती'। मैं घबराकर इधर-उधर देखने लगा। अरे! यहाँ तो सभी इसी फ़िराक़ में है कि वह टिकट-विंडो तक पहुँचने स बचते रहें। इसके लिए वे तमाम उपाय कर रहे है और अपना पैसा भी पानी की तरह बहा रहे हैं। मै मन-ही-मन हँस रहा हूँ। भाई यही करना है तो क्यू में लगने का क्या शौक है', पर फिर सोचता हूँ कि मैं भी अपना कोई शौक पूरा करने को थोडे ही इस क्यू म लगा हूँ।

क्यू मे मेरे आगे एक लबा-तगडा दादा जैसा दिखाई देनेवाला व्यक्ति लगा हुआ है। वह किसी बात पर अपने आगे लगे हुए व्यक्ति से झगडा कर बैठता है। दोनो मे गाली-गलौज, गुत्थम-गुत्था होने लगती है। अरे यह क्या! उस दादा ने अगले व्यक्ति को उठाकर ऐसा फेंका कि सीधा टिकट-विंडो पर जाकर गिरा और उसे तुरंत टिकट मिल गया। अब क्यू मे लगे अन्य लोग शोर मचा रहे हैं कि क्यू-जंपिग कराना अनियमितता है, अपराध है। दादा को पकडने व उसे भी शीघ्र टिकट-विडो तक पहुँचाने का प्रयत्न कर रहे है परंतु दादा इतना चालाक है कि किसी-न-किसी तरह बच जाता है

अचानक सब लोगो का ध्यान क्यू मे पीछे एक स्थान की ओर खिंच जाता है। वहाँ से रोने-चिल्लाने एवं 'हर-हर महादेव', 'अल्लाहो-अकबर' की आवाज आ रही हैं। आस-पास के लोग दो समूहों में बँटे हुए हैं। वे दूसरे समूह के लोगो को उठा-उठाकर क्यू-जपिंग करा रहे है। ये फेंके हुए कुछ लोग तो टिकट-विंडो से पहले ही गिर जाते हैं और कुछ टिकट-विंडो पर पहुँच जाते हैं और उन्हें तुरंत टिकट प्राप्त हो जाता है। अब मै गर्दन निकालकर अपने आगे व पीछे दूर-दूर तक क्यू को देखता हूँ तो कहीं जातियों के समूह, कहीं आतंकियों के समूह, कही नस्लवादियों के समूह, कही राजनीतिक अथवा आर्थिक स्वार्थियो के समूह तमाम अन्य व्यक्तियों को क्यू-जंपिग कराने का उपाय करते दिखाई दे रहे हैं। कुछ लोग दूसरो को क्यू-जंपिंग कराके उनका शीघ्र टिकट कटाकर ही नेता बन गए हैं और इस तरह उन्होंने बडा नाम कमा लिया है। अन्य लोग उनकी यशगाथाएँ लिख रहे है, उन पर फ़िल्मे बना रहे है और उन्हें अपने दलो मे शामिल करने की होड मे है।

परतु ऐसे व्यक्तियों के कार्यो की सर्वत्र प्रशसा की जा रही है, जो अन्यो की टिकट-विंडो की ओर बढ़ने की गति कम करने का प्रयत्न कर रहे हैं। कभी-कभी तो ये लोग उस व्यक्ति को टिकट-विंडो के पास से वापस खींच लेते हैं, जो टिकट कटाने-हेतु अपना हाथ बढ़ा चुका होता है। किसी साधारण क्यू के नियमों के विपरीत ऐसा कार्य करनेवालों को बड़ा धन व सम्मान दिया जा रहा है।

मै सोच रहा हूँ कि केसा अनोखा है यह क्यू कि इसमे लग सभी लोग यह भ्रम स्वय पालकर दिन–प्रतिदिन के अपने कार्य कर रहे हैं, जैसे वे कभी टिकट–विंडो तक पहुँचेगे ही नहीं, जबकि सभी को टिकट मिलना इस क्यू की अनिवार्यता है। मै फुरसत मे इस अनोखे क्यू क अनोखे दृश्यो का आनंद ले रहा हूँ, क्योंकि क्यू–जपिग की न तो मुझे आदत है और न चाह।

❑

पौराणिक नाम

यदि आप किसी अनाम शिशु क माता या पिता बनने वाले हैं, तो कृपया उसका पौराणिक नाम रखने से पूर्व मुझ भुक्तभोगी का यह लख अवश्य पढ ले।

हमारे (मेरे व मेरी धर्मपत्नी के) दो पुत्र हुए और हमने आधुनिक दिखने के प्रयत्न में उनके नाम राजर्षि व देवर्षि रख दिए थे, यद्यपि प्यार से हम उन्हे बब्बल और दीपू बुलाते थे। इन नामो को जिसने सुना उसी ने कहा कि नाम बड़े छॉटकर कर रखे है, परतु शायद ही किसी ने उनको इन नामों से बुलाने का प्रयत्न किया हो। सभी ने घरेलू नामों स ही बुलाया। सीधी-सी बात थी कि जिह्वा को अनावश्यक कष्ट क्यो दिया जावे।

फिर राजर्षि को जब सेंट पौल स्कूल मे भर्ती कराने गया तो उसका नाम राजेश लिखकर आया। अत: भर्ती कराने हेतु प्रिंसिपल आफिस के जो तीन चक्कर मैं पहले लगा आया था, उनमे नाम के शुद्धीकरण-हेतु एक और जोडना पडा। कुछ दिन बाद राजर्षि स्कूल से आकर मुझसे बोला, 'पापा, मिस मुझे राजश्री क्यो कहती है?' मै समझ गया कि फिर कहीं कुछ घपला है और मिस को जाकर समझा आया कि नाम राजश्री नहीं राजर्षि है। मिस एक अँग्रज़ीदाँ क्रिश्चियन थी, अत: उन्होंने 'सौरी, थैंक्स' आदि कहते हुए सही नाम से पुकारने का वादा किया, परतु जब राजर्षि की मार्क्स-शीट आई तो उसमे नाम अँग्रेज़ी में राजरिषी लिखा हुआ था। मुसीबत इसी स्कूल में समाप्त नही हुई। चूँकि मैं चकरघिन्नी

की तरह स्थानांतरित किए जानेवाला पुलिसकर्मी हूँ, अतः राजर्षि को बार-बार नए-नए स्कूलो में भर्ती कराना पड़ता रहा, और हर बार उसका नाम सही कराने की समस्या आती रही। और ऐसा कभी नहीं हो सका कि उसके स्कूल के सभी अध्यापक उसे सही नाम से पुकार सके हों- किसी के लिए वह राजेश रहा, तो किसी के लिए राजश्री, तो किसी अन्य के लिए राजरिशी और किसी के लिए ठेठ राजसी।

जब उसने 12वीं कक्षा पास कर ली और लखनऊ विश्वविद्यालय मे प्रवेश-परीक्षा का परिणाम देखने गया, तो चयनित विद्यार्थियों की सूची देखने-हेतु तीन चार लड़के वहाँ पहले से खड़े हुए थे। उनमें से एक लडका प्रारभ से नाम पढ़ रहा था। जब मेरे बेटे का नाम आया तो गद्गद् होकर बोला, 'चलो एक लड़की हमारे क्लास में आई।'

मेरे दूसरे बेटे देवर्षि के साथ भी कम हादसे नहीं हुए हैं। जब वह छठे क्लास में एक नए क्रिश्चियन स्कूल में प्रवेश लेने-हेतु गया, तो उसकी एंग्लो इंडियन मिस ने उसका नाम देवरजी लिखा दिया। मैं बडी कठिनाई से उन्हें समझा पाया कि मेरा बड़ा बेटा तो अभी अनब्याहा है फिर छोटा उनका देवरजी कैसे हो गया। देवर्षि के बड़े होने पर मैंने उसके लिए एक मोटर साइकिल ख़रीद दी। मोटरसायकिल के बीमे की पॉलिसी पर उसका नाम देवेश चढ़कर आ गया और जब मोटरसायकिल का एक्सीडेंट हुआ तो मुझे बीमा वालों को यह समझाने में नाकों चने चबाने पडे कि बीमा राशि का हकदार मेरा बेटा देवर्षि है।

मैं स्वयं भी अपने नाम के उच्चारण की क्लिष्टताजनित हास्यास्पद स्थिति का शिकार हो चुका हूँ। वरिष्ठ पुलिस अधीक्षक, लखनऊ के पद पर नियुक्ति के दौरान मुझे प्रायः शिया एवं सुन्नी मुसलमानो के लीडरान से वार्ता करनी पड़ती थी और प्रायः वे मुझे आदर से 'दुर्वेदी साहब' कहकर पुकारते थे।

❑

दाढ़ी वृत्तांत

दाढ़ी पर शोध करना न तो मेरा कोई शौक है और न इससे मुझे कोई डिग्री हासिल हो सकती है, पर एक दिन मजबूरी की अवस्था में मुझे दाढियों का अध्ययन करना पड़ा, जिसका परिणाम यह शोध-पत्र निकला। हुआ यूँ कि जनपद बलरामपुर के गैसड़ी कस्बे में मेरी कार खराब हो गई और ठीक होने का नाम ही नहीं ले रही थी। या तो मेरे साथ के वर्दीधारी पुलिसमैन के कारण या गाडी में लगे झंडे के कारण काफ़ी वयस्क पुरुष व बच्चे मेरी गाड़ी के आस-पास मँडराने लगे। पुलिस मे होने के नाते मैं इस दृश्य का आदी हो चुका हूँ और मैं उन लोगों की ओर विशष ध्यान भी नहीं देता, यदि साथ मे बैठी मेरी पत्नी ने उन लोगों मे नयापन न देखा होता कि वे अधिकतर दाढ़ी रखे हुए थे। चूँकि हम दोनों काफ़ी बोर हो चुके थे, अत: उनकी भाँति-भाँति की दाढ़ियों को गौर से देखने लगे। तब हम लोगों ने पाया कि दाढ़ी सचमुच एक अवलोकनीय, निरीक्षणीय, परीक्षणीय, खींचनीय एवं हँसनीय वस्तु है।

सर्वप्रथम जो सज्जन हमारी निगाह में पड़े, उनकी दाढी दाढ़ी नहीं थी वरन् तुक्की थी। यदि आपको कभी खसी बकरों के निरीक्षण का सौभाग्य प्राप्त हुआ हो तो आपने तुक्की देखी होगी- यह पतले लबोतरे चेहरे पर शोभायमान होती है, जिसमें ठुड्डी पर थोड़े से लंबे-लंबे बाल होते हैं तथा कलम के स्थान पर थोड़े से बाल होते हैं, शेष चेहरे पर बाल नगण्य होते हैं। तुक्की धारकों के पान की पीक लंब (वर्टीकल) दिशा

म नीचे को बहती है। तुक्की धारक की मूँछ में भी कम बाल होते है। तभी एक सज्जन आकर ड्राइवर से बोले, 'क्या कोई मिस्तरी चाहिए?' और हमारा ध्यान उनकी सदाबहार वन जैसी लहलहाती दाढ़ी की ओर गया। मेहँदी लगाकर दाढ़ी को बडे जतन से लाल किया गया था परतु छोटे-बड़े राजनीतिक दलो की तरह दाढ़ी के छोटे-बड़े गुच्छे अलग-अलग दिशा में झाँक रहे थे, जैसे चुनाव के दौरान आपसी बोलचाल भी बंद हो गई हो। इन सज्जन ने मूछें साफ़ कर रखी थीं और होठो के कोनों पर दाढी को उस्तरे से ऐसे साफ किया था जैसे बाल बनाते समय नाई उस्तरे से कलम बनाता है। पूरा चेहरा ऐसा लग रहा था जैसे सूखे नारियल के फल की जटाएँ उघाड़कर कोई लटका दे और बीच मे आँख, नाक, मुँह बना दे। इसी बीच वहाँ एक बुल्गानिन के अनुयायी प्रकट हो गए। केवल ठुड्डी पर करीने से कटी छोटी-सी दाढ़ी और गालों पर 'क्लीन-शेव'। जब मैंने अपनी पत्नी से बुल्गानिन के दर्शन करने को कहा, तो वे बोली, 'आपका अनुमान गलत है। चूँकि आप पुराने ज़माने के हैं, इसलिए आपको बुल्गानिन की याद आयी है, जबकि वास्तव में यह सज्जन निवर्तमान भारतीय प्रधानमंत्री के चेले हैं।' इसी बीच झुर्रीदार चेहरे वाले एक सज्जन एक नन्हे बच्चे को गोद में लिए वहाँ प्रकट हुए। उनकी दाढी इतनी सफेद चमकदार थी जैसे धुन्ने ने नई कपास धुनकर बनाई हो। उनकी दाढ़ी को हम लोग ध्यान से देखने लगे कि वह गोद में लिए बच्चे के गाल से छू गई और बच्चे ने प्रेम से हाथ बढाकर दाढ़ी को कसकर पकड लिया। फिर वह जितना छुडाने का यत्न करें, नन्हे हाथ की पकड़ उतनी मजबूत होती रही। पास में खड़े पुलिस के गनर ने जब उस बच्चे की मुट्ठी जोर लगाकर खोली, तब दाढ़ी इस अचानक आए त्रास से मुक्त हो पाई।

हम स्थानीय दाढ़ियों में कुछ का ही अध्ययन कर पाए थे कि हमारा ध्यान पास से गुजरती एक मारुति पर चला गया, जिसमे पिछली सीट पर एक गेरुआ वस्त्रधारी सज्जन बैठे हुए थे। वाह! क्या शानदार दाढी थी उनकी। जैसे वह सज्जन खाए-पिए घर के लग रहे थे वैसी ही घनी फहरती दाढी थी उनकी। और मूँछें भी खूब सेहतमंद थी। देखकर

तबियत प्रसन्न हो गई और दिल को तसल्ली हुइ।

तभी एक पगडीधारी सज्जन आकर कार के खुले इंजन पर झुक गए। उनकी दाढ़ी को खूब ग्रीज़ लगाकर चिपकाया गया था और मूँछों को भी ग्रीज़ से नुकीली तलवार की तरह उमेठा हुआ था। हम दोनो यह दाढी देखकर 'इम्प्रेस' हो गए कि इसी बीच उनकी पगडी सर से गिर गई और पूरी तरह गजा सर चमकने लगा। पगडी हाथ मे उठाकर वह सज्जन जो खडे हुए तो खल्वाट खोपडी के नीचे तलवार-कट मूँछें एव चिकनी-चुपडी दाढ़ी का दृश्य बड़ा अनोखा लग रहा था। हमे हँसी छूट रही थी परतु उन सज्जन ने बिना झेंपे पगड़ी कार की छत पर रख दी और फिर इजन पर झुककर दो-चार हाथ लगाए और एक-आध जगह ग्रीज़ लगाई कि गाडी फर्र से स्टार्ट हो गई। मैने उन सज्जन को धन्यवाद दिया और चल दिया।

रास्ते मे मेरी धर्मपत्नी बोली कि जिस तरह उन सज्जन की दाढी को ग्रीज की आवश्यकता थी, उसी तरह इस गाड़ी को भी ग्रीज की आवश्यकता थी और संभवतः वह सज्जन ग्रीज लगाने मे उस्ताद थे।

❑

गैस

रसायनविज्ञान की प्रारंभिक कक्षाओं में गैस के भौतिक एव रासायनिक गुणों को अध्यापक द्वारा बार-बार समझाने के बावजूद मै केवल इतना समझ सका था कि गैस कोई ऐसी वस्तु होती है, जो स्वत: उडायमान हो जैसे हवा। सच तो है कि गैस की बात आते ही हवा का ध्यान स्वत: आ जाता था। परंतु हाईस्कूल में जब प्रयोगशाला मे घुसने का मौका मिला तो सबसे पहले अमोनिया गैस की तेज महक सूँघकर पता चला कि गैस ओर चीज भी हो सकती है। फिर तो विभिन्न प्रकार के तेजाबों की गैस, क्षारों की गैस एव सबसे अधिक अमोनिया गैस प्रतिदिन सूँघना एवं उसकी महक सहन करना अपना रोज-रोज का भाग्य ही बन गया। गैस की तेज़ी तब और अधिक समझ मे आई जब एक दिन एक छात्र द्वारा कुछ रासायनिक पदार्थ एक मेज़ पर बिखर गए और आपस में मिल गए। ऐसा दमघोंटू वातावरण पैदा हुआ कि सभी छात्र आँखें मलते हुए प्रयोगशाला से भाग खड़े हुए।

कुछ वर्ष बाद पढने के लिए अमरीका जाने का मौक़ा मिला। मेरे एक मित्र एयरपोर्ट पर मुझे लेने आए थे। उस दिन जे.एफ कनेडी एयरपोर्ट पर बड़ी खुशनुमा सुबह थी। मित्र की कार में बैठकर हम न्यूयार्क से कुछ ही दूर निकल पाए होंगे कि उन्होंने कहा, 'पार्टनर, गैस ले लें, तब चलते हैं।' मुझे आश्यर्च हुआ कि रास्ते में गैस का क्या करेंगे, परतु तब तक मित्र ने कार एक पैट्रोल टंकी की बगल में खड़ी कर दी और बाकायदा हिंदुस्तानी ढंग का पैट्रोल टकी मे भरने लगे। कार के पुन: चल देने पर मैने कहा कि तुम कौन-सी गैस की बात कर रहे थे तो वह

मुस्कराकर बोले, 'यार, यहाँ इसी को गैस कहते हैं और पैट्रोल पप को गैस स्टेशन कहत है।' तब मेरी समझ मे आया कि गैस केवल वह वस्तु नहीं होती, जो स्वत: उड़ायमान हो। कम-से-कम अमरीका में वह स्वत: बहायमान भी हो सकती है।

कुछ साल बाद अमरीका से जब भारत लौटा तो देखा कि हिंदुस्तानी घरों में चूल्हे की जगह गैस का प्रचलन हो गया था। इसका नाम था लिक्विड-पेट्रोलियम गैस- यानी द्रव भी और गैस भी। तब मेरी समझ मे आया कि अमरीका मे पैट्रोल को गैस कहने मे कोई अजूबा नहीं है।

इस बीच हिदुस्तान क लोग एक अन्य प्रकार की गैस से भी परिचित हो चुके थे-पेट की गैस। जहाँ देखो वहीं विज्ञापन देखने को मिलते थ- गैसांतक बटी या गैस-हरन, गैसविनाशक चूर्ण, अथवा गैसमुक्ति की गोलियाँ। अस्पताल मे यदि कोई मरीज़ सरदर्द का इलाज कराने जाए और डाक्टर गैस की दवा दे, तो अब लोगो को आश्चर्य नहीं होता था। गैस के विषय में जानकारी के साथ भारतीयों के गैस-उत्पादन की क्षमता भी दिन-दूनी रात-चौगुनी बढ़ रही थी। मेरी धर्मपत्नी तो इस समस्या का लाभप्रद हल यह बताती थीं कि भारत के लागो के पेट से खाली गैस सिलिडर जोड दिए जाएँ। इससे उन्हे ता गैस से मुक्ति मिलती ही रहेगी, साथ ही अमीर-ग़रीब सबका चूल्हा बिना कुछ व्यय किए जलता रहेगा। जब मै नान-कवेंशनल इनर्जी डेवलपमेट ऐजंसी का डाइरेक्टर नियुक्त हुआ तो मेरी पत्नी ने मुझे इस नान-कवेंशनल सोर्स आफ इनर्जी पर अधिक जोर देने का सुझाव भी दिया परंतु मै केवल अपने छात्र-जीवन के अनुभवो के कारण इस पर अमल नहीं कर पाया हूँ, क्योंकि में जानता हूँ कि प्रयोगशाला की गैसों की महक तो किसी तरह बरदाश्त भी की जा सकती है परतु मानव तो ऐसी-ऐसी ताजातरीन खुशबुओं वाली गैस पैदा करता है कि उसमे पका खाना मेरे गाँव का कुत्ता भी खाने का साहस नहीं कर सकता है। हाँ, मैने पैरिस वालों को अवश्य लिख भेजा है कि यदि नवीन इत्रों के फार्मूला की उनके पास कमी पड़ गई हो, तो इस गैस पर एक्सपेरीमेंट करके देख ले। उनकी प्रथम प्रतिक्रिया अत्यंत उत्साहवर्धक है।

❑

प्यासे हैं पैट्रोल पीजिए

डिट्रौइट से शिकागो जाते हुए एक जगह हैमंड एंड गैरी पड़ती है। कार पर चलते-चलते हम सब लोग थक रहे थे। अतः हैमंड एंड गैरी पहुँचने के कुछ पहले एक जगह 'मैक्डोनाल्ड' (फास्ट-फूड रेस्ट्राँ) का साइन देखकर रूक गए। रेस्ट रूम (बाथरूम या ट्वाइलेट का अमरीकन पर्यायवाची शब्द) जाने के बाद पीने के लिए मैं कुछ देखने लगा, तो पानी (मिनरल वाटर) की एक लीटर की बोतल का मूल्य 1 डालर 9 सेंट (लगभग 50 रुपया) देखकर बहुत अधिक लगा। उसी के बग़ल मे पेप्सी के दो लीटर का मूल्य 79 सेंट (लगभग 33 रुपए) लिखा देखकर आश्चर्य हुआ, क्योंकि एक लीटर मिनरल वाटर के मूल्य मे पौने तीन लीटर पेप्सी मिल रही थी। इस पर विचार करते हुए बाहर गैस-स्टेशन (पैट्रोल पंप) पर नज़र पड़ गई। बडे से खंभे में अन्लेडेड पैट्रोल का मूल्य 1 डालर 9 सैंट में एक गैलन (पौने चार लीटर) लिखा दिखाई दिया। यानी एक लीटर मिनरल वाटर के मूल्य में पौने चार लीटर अन्लेडेड पैट्रोल मिल रहा था। मैंने 'टका सेर भाजी और टका सेर खाजा' वाली कहावत सुनी थी परतु 'टका सेर भाजी और टका सेर खाजा' बिकता हुआ आज पहली बार देख रहा था।

तभी मेरी निगाह लेडेड पैट्रोल के भाव पर पड़ गई जो 1 डालर 18 सेंट का एक गैलन था, यानी साफ़ किया हुआ अच्छा पैट्रोल सस्ता था और प्रदूषण फैलाने वाला पैट्रोल महँगा था। मुझे इस पहेली का कारण समझ में नहीं आ रहा था। अतः मैने मैक्डोनाल्ड के एक कर्मचारी से

इसका कारण पूछ लिया वह बोला, श्रीमान साधारण सी बात है अमेरिकन प्रशासन चाहता है कि जनता अन्लेडेड पैट्रोल का प्रयोग अधिक करे, जिससे प्रदूषण कम हो, इसलिए इसे सस्ता कर रखा है। इस कारण यहाँ के लोगों ने लेडेड पैट्रोल की कारें ख़रीदना लगभग बंद कर दिया है।' मुझे उसकी बात और अमरीकन प्रशासन के तर्क में बड़ा वजन लगा और मैं सोचने लगा कि जनता को उचित रास्ते पर लाने का यह कैसा युक्तिसगत एवं प्रभावशाली तरीका है।

मैं आगे पानी व पैट्रोल के भाव के आश्चर्यजनक अंतर का कारण पूछकर अपना अज्ञान प्रदर्शित नहीं करना चाहता था, अतः यह मानकर संतोष करना पड़ा कि संभवतः अमरीकन प्रशासन जनता को पानी की जगह पैट्रोल पीने को प्रेरित करना चाहता होगा।

❑

पदच्युत इंद्र

चक्रवर्ती राजा से उसके एकछत्र राज्य को अचानक छीन लिया जाए और वह इतना निरीह हो कि उसे यह भी न पता चल सके कि ऐसा उसके साथ क्यों किया जा रहा है तो उसकी जो दशा होगी, उससे कई गुनी बड़ी मानसिक त्रासदी थी उसकी, क्योंकि उसे समझाया जा रहा था, 'तुम्हें तुम्हारे एकछत्र राज्य से वंचित करने वाले से घृणा करने के अधिकार से भी वंचित किया जाता है और उसे प्यार करना तुम्हारा कर्त्तव्य है।'

वह 2 वर्ष का बालक था, परंतु उसमें अन्य बालकों की अपेक्षा एक विशेषता थी। उसकी माँ अपने माता-पिता की सबसे बड़ी पुत्री थी और उसके पिता अपने माता-पिता के सबसे बड़े पुत्र थे- और वह अपने घर की एकमात्र संतान था। इसप्रकार वह अपने, अपने नाना व अपने बाबा के घरों में एकमात्र बालक था और माता-पिता, बाबा-दादी व नाना-नानी की आँख का तारा था। उसकी माँ उस पर जान छिड़कती थी और उसे प्यार में कहती भी थी कि वह मम्मा की जान है। वह कुशाग्रबुद्धि बालक था परंतु उसमें अपनी आयु स अधिक बचपना सदैव रहा था- जैसे ढाई-तीन साल की आयु तक उसने ठीक से बोलना आरंभ नहीं किया था और उसका साल-भर का होकर भी मम्मा-पापा के अतिरिक्त कुछ न बोलना उसके माता-पिता, बाबा-दादी के लिए चिंता का विषय भी रहा था। अब चार वर्ष की आयु में वह बोलने तो लगा था परतु बचकाने ढग से। उसका यह बचपना उसे और अधिक अलकरण

की वस्तु एव प्यार का पात्र बनाए हुए था।

दूसरे बच्चे क जन्म की संभावना पर उसके माता-पिता को बडी उलझन अनुभव हुई थी कि उसे कैसे बताया जाए। खूब सोच-समझकर उसकी माँ ने उससे कहा, 'बेटा, तुम्हारे साथ खेलने को कोई नहीं है तुम्हें अकेलापन लगता होगा। इसलिए अव तुम्हारे साथ खेलने को एक बहिन आएगी या भाई आएगा।'

'कहाँ से आएगी' उसने पूछा। उसके उत्साह मे एक शंका भी छिपी थी।

'मम्मा के पेट से।' माँ ने सच बोलना उचित समझा।

वह कुछ देर सोचता रहा, फिर बोला, 'क्या मेरे दोस्त प्रांजल की वहिन जैसी होगी।' उसन अपने दोस्त की छोटी-सी बहिन को देखा था और उसे वह अच्छी लगी थी।

'हाँ, लेकिन छोटा-सा भाई भी हो सकता है।'

'मम्मा अगर भाई हो तो उस तुम पेट में ही रखे रहना।' उसने अधिकार के साथ कहा। उसकी माँ हँस दी।

वह अपनी माँ का अत्यंत प्यार करता था और उस पर अपना पूर्ण अधिकार समझता था। उसकी माँ को देखने जब डाक्टरनी आई थी और उन्होंने परीक्षण-हेतु कमरा बद कर लिया था, तो उसने इस आशका स कि वह माँ को इंजेक्शन न लगा दें, दरवाज़ा पीट-पीटकर घर सिर पर उठा लिया था और डाक्टरनी के निकलने पर उन पर झपट पडा था।

जब नर्सिंग होम में उसके छोटे भाई का जन्म हुआ तो उसे इसकी सूचना दादी ने दी। इस सूचना पर वह कुछ शांत-सा हो गया था परंतु कोई स्पष्ट प्रतिक्रिया व्यक्त नहीं की थी, परंतु तीन दिन बाद जब उसने नर्सिंग होम मे उस छोटे-से बच्चे को अपनी मम्मा के बगल मे लेटे हुए देखा, तो उस समय उसका चेहरा पदच्युत इंद्र के समान लग रहा था। वह न तो उस बच्चे को देख रहा था और न किसी और को। बस अपने दुख, क्रोध व आँसुओं को छिपाने हेतु अपना चेहरा छिपा रहा था।

माँ के नर्सिंग होम से घर आ जाने पर उसने दूसरे दिन सुबह स्कूल जाने से मना कर दिया। जब माँ ने समझाना चाहा तो बोला, 'मम्मा तुम

मुझे प्यार नहीं करती हो।' उसके हिसाब स बात सही थी, क्योंकि चाहते हुए भी माँ उसे हाथ से खाना खिलाने, लोरी सुनाकर सुलाने एव अपने हाथ से स्कूल जाने को तैयार कराने का काम नहीं कर पाई थीं। दूसरे दिन यह लालच देकर ही उसे स्कूल ले जाया जा सका था कि उसके हाथ से उसके साथियो को लड्डू बँटवाने हैं।

एक दिन जब वह पलग पर बैठा था तो उसकी माँ ने उसके छोटे भाई को उसकी गोद में रख दिया था। वह उसे ध्यान से देखने लगा था लेकिन जब बाबा ने कहा, 'कैमरे की तरफ देखो, दोनों की फोटो ले ले,' तो उसने उस छः दिन के बच्चे को पलंग पर लुढका दिया था। एक दिन उसने अपने क्रोध को दबा न पाने पर छोटे भाई की उँगली खीच दी थी। माँ जब उसे इसके लिए समझा रही थी तो बोल पडा, 'मम्मा तुम इसे फिर अपने पेट मे रख लो।' इसी प्रकार एक दिन उसके छोटे भाई की पकड में उसकी माँ की साडी का पल्लू आ गया था और वह उसे खीचने लगा था तो उसने क्रोध में छोटे भाई का हाथ झटककर कहा, 'मम्मा, यह तुम्हें क्यो प्यार करता है?' इस पर माँ ने क्षोभ से भरकर कहा था, 'अच्छा, तो अब हम इसे बाबा-दादी के पास ही छोड़ देंगे और हम लोग पापा के साथ चले चलेंगे।' इस पर एक अनोखी प्रतिक्रिया व्यक्त करते हुए वह माँ से क्रोधित होकर बोला था, 'माँ, तुम कैसी बात करती हो?' उसकी माँ नही समझ सकी थी कि वह क्या कहना चाह रहा था कि क्या वह सभव है अथवा क्या ऐसा सोचना उचित है!

परतु एक दिन जब उसकी माँ किचन में व्यस्त थी, तभी उसके तीन साथी उसके घर पर आ गए थे और उसके छोटे भाई के पलंग पर बैठकर उछलकूद करने लगे थे। तब उसने घबराकर छोटे भाई के आस-पास अपने हाथ रखकर उन पर चिल्लाना शुरू किया, 'हटो-हटो, दूर हटो। मेरे छोटे भाई को चोट लग जाएगी।' जब उन बच्चों ने ध्यान नहीं दिया तो वह फिर चिल्लाया, 'माँ-माँ, हटाओ इनको, मेरे छोटे भाई को बचाओ।'

माँ यह दृश्य देखकर अवाक् एव आह्लादित हो रही थी।

❑

दो हज़ार पचीसी

'जल्दी से एक बी-निगेटिव जवान गधे का दिल देना।' एक चमचे ने किसान से कहा।

चौकिए नहीं, 'यह कोई गधापचीसी नहीं है। हाँ, दो हज़ार पचीसी अवश्य कही जा सकती है। आज एक अप्रैल सन् दो हज़ार पचीस है और आज के पाँच वर्ष पूर्व वैज्ञानिकों ने जेनेटिक इजीनियरिंग के माध्यम से यह खोज कर ली थी कि यदि भारतीय गधे के शरीर के जीन्स मे मानवीय जीन्स को प्रवेश करा दिया जाए, तो उसकी सतानो के अवयवो को मानव-शरीर स्वीकार कर सकता हैं और उन्हे मानव-शरीर मे प्रत्यारोपण-हेतु प्रयोग किया जा सकता है। फिर क्या था! यह खोज करने वाले अमरीकी वैज्ञानिकों का सारा ध्यान भारत के गधो पर केंद्रित हो गया और गधो की पौ-बारह हो गई। वाशिंग मशीनों के भारतीय घरों में प्रवेश के बाद धोबी का गधा न घर का रह गया था और न घाट का और उसकी छीछालेदर हो रही थी। परंतु जैसी कि कहावत है 'हर कुत्ते के दिन बहुरते है' उसी तरह भारत के गधो के दिन भी बहुर गए। खाद्य विशेषज्ञ गधों के लिए उपयोगी खुराक की खोज में लग गए, चिकित्सक उनको स्वस्थ रखने हेतु जुटे रहने लगे और डंकी-डाक्टर्स कहे जाने मे अपनी शान समझने लगे, यौन-चिकित्सक उनकी प्रजनन-शक्ति बढाने (जो प्रत्यक्षत: कभी कम नहीं रही थी) हेतु शोधपत्र लिखने लगे और किसानो ने खेतो मे गहूँ मक्का बोने के बजाय उन्हे डंकी फार्म बना

निकला, क्योंकि दुनिया-भर से इनके अवयवों की माँग बढ़ती जा रही थी। भारत ने भारतीय गधों के देश के बाहर जाने पर रोक लगा दी जिससे अन्य देश अपने यहाँ ऐसे गधे न पैदा कर ले। भारत के जाने-माने महानुभावों को इलाज-हेतु अब ह्यूस्टन या बोस्टन जाने की आवश्यकता नही रह गई थी, क्योंकि जहाँ उनका अग अधिक उपयोग या दुरुपयोग के कारण खराब हुआ, किसी गधा या गधी के अंग से प्रत्यारोपण कर दिया जाता। तभी एक दिन कृपि विभाग के एक महानुभाव के दिल मे दर्द आरभ हुआ और डाक्टरो ने परीक्षण कर अविलंब दिल के प्रत्यारोपण का सुझाव दिया। उसी पर अमल करने हेतु उनका ख़ास चमचा पास के किसान से एक जवान दिल ख़रीदने हेतु हाँफता हुआ आया था।

किसान ने कहा, 'दस हज़ार रुपए का मिलेगा'

चमचा गुर्राकर बोला, 'जानता नही कि यह दिल किसके लिए जा रहा है।' महानुभाव 'डंकी फार्मिंग' के लिए मिलने वाली 'सब्सिडी' (अनुदान) बद कर देगे ता दाल-आटा का भाव याद आ जाएगा।'

'किसान को मन-ही-मन बहुत क्रोध आया, पर बिना बोले वह बाड़े मे घुसकर एक खास' गधे को बाहर ले आया और उसका दिल निकालकर चमचे द्वारा लाए गए फ्लास्क मे रख दिया। चमचा धन्यवाद तक कहे बिना अकडता हुआ चला गया।

डाक्टरो ने बडी दक्षता से महानुभाव के दिल का प्रत्यारोपण कर दिया और उनका दिल जवान हो गया। उनमे एक तरह की जवानी का जोश आ गया। उनकी क्षमता देखकर उनके जाननेवाले लोग आश्चर्यचकित हो रहे थे। इस प्रकार एक वर्ष बीत गया। परंतु एक अप्रैल सन दो हज़ार छब्बीस की रात्रि में महानुभाव की सुरक्षा गार्ड का संतरी हैरान हो रहा था कि उनके कमरे से प्रतिरात्रि की भाँति खर्राटों की आवाज के बजाय नए प्रकार की ध्वनियाँ क्यों प्रसारित हो रही हैं? कभी लगता कि कोई ढेंचू-ढेंचू कर रहा है और कभी लगता कि कोई किसी के पीछे कमरे मे दौड़ रहा है। सतरी बिचारा बड़े लोगों के घरों से तरह-तरह की आवाजे पहले भी सुन चुका था, इसलिए उसने उस दिन चुप रहना ही बेहतर समझा। परंतु जब उसे आगे भी रात में इस तरह की आवाज़े सुनाई दी,

ता उसने डरते-डरते चुपचाप यह बात महानुभाव के प्रायवेट सक्रेटरी को बताई और कहा, 'लगता है कि महानुभाव को अच्छी नींद नही आती है। शायद उन्हे डाक्टरी जाँच की आवश्यकता है।' प्रायवेट सेक्रेटरी न संतरी को झिडक दिया ओर यह बात किसी अन्य से न कहने का हुक्म दिया।

धीरे-धीरे प्रायवेट सेक्रेटरी को भी कुछ अनोखी बाते दिखने लगी। क्याकि प्राय: महानुभाव के पास फाइल भेजी जाती आलू या प्याज की फसल बढ़ाने की और आदेश आता गधइयों के भोजन में सुधार का। तभी एक दिन वही किसान, जिसने महानुभाव को दिल भेजा था, उनस अपने डकी-फार्म के विस्तार के अवसर पर मुख्य अतिथि के रूप मे पधारने का निमत्रण लेकर आया। महानुभाव ने सहर्ष एव सोत्साह निमंत्रण स्वीकार कर लिया। महानुभाव ने मंच पर बडा जोरदार भाषण दिया, 'मुझे इस डंकी फार्म के विस्तार के अवसर पर यहाँ आकर हार्दिक प्रसन्नता हो रही है। आज हमारे प्रदेश में अधिक-से-अधिक गधे और गधइयो की आवश्यकता है। विशेषत: गधइयों की, क्योकि इनकी सख्या जितनी अधिक होगी उतने ही अधिक गधे पैदा होंगे। इनसे प्रदेशवासियों की आय, स्वास्थ्य एव बुद्धि मे सुधार होगा। इनसे हमारा निर्यात बढ़ेगा ओर देश-देश में हमारा नाम होगा कि हमारे यहाँ इतने अधिक गधे हैं।'

'तभी उस मेज़बान किसान न, जिसने महानुभाव को खास' गध का दिल दिया, बडी नम्रता से आगे बढ़कर निवेदन किया, श्रीमान मैने फार्म के विस्तार-हेतु गधो के सबसे बड़े प्रदेश से एक विशेष नस्ल की गधइया आज ही मँगाई है, यदि अनुमति दें तो प्रस्तुत करूँ।

यह सुनकर महानुभाव के चहरे पर अचानक चमक आ गई और तपाक से बोले, 'हाँ, अवश्य लाओ।'

किसान ने एक नवयुवती गधइया लाकर मच पर खड़ी कर दी और महानुभाव ललचाई नज़रों से उसके अग-प्रत्यग का निरीक्षण करन लग। तभी वह गधइया महानुभाव के नेत्रों का भाव भाँपकर मच से भागी और महानुभाव ढेंचू-ढेंचू करते हुए उसके पीछे भागे। उनके चमचे उन्हे बडी कठिनाई से पकड़ पाए और सीधे अस्पताल ले आए, जहाँ जनरल फिज़ीशियन ने उन्हे शारीरिक रूप से पूर्णत: स्वस्थ घोषित करते हुए

मनोचिकित्सक को दिखाने की राय दी। मनोचिकित्सक ने रोग का मूलकारण ज्ञात कर महानुभाव के प्रायवेट सेक्रटरी को राय दी है कि उनके कमरे में रोज़ रात्रि एक गधइया बाँधी जाए।

इस घटना का प्रदेश के समाचारपत्रों में भरपूर प्रचार हुआ है और प्रदेश की जनता ने गधों के इतने प्रिय पात्र को अगले चुनाव में प्रदेश का मुखिया बनाने का निश्चय किया है।

❑

भाड़े के पति (रेंट ए हस्बैंड)

पतियो! सावधान। अब तुम घर की अनावश्यक वस्तुओं मे एक बनते जा रहे हो। भला जब पति भाड़े पर उतने समय के लिए मिल रहे हो, जितने के लिए उनकी आवश्यकता हो, तो चौबीसों घंटे कोई पत्नी क्या घर मे एक ही पति की शक्ल देखना बरदाश्त करेगी?

बात यूँ है कि इंग्लैंड के मार्क हौकिन्स नामक उद्यमी व्यक्ति ने मार्केट रिसर्च (शोध) कर जब यह पाया कि आदर्श पति की इच्छा रखने वाली स्त्रियों के पैमाने पर खरे उतरने वाले पति कम ही हैं, तब उन्होंने 'रेंट ए हस्बैंड' (भाड़े का पति) नामक कंपनी इंग्लैंड में खोल दी है। वैसे उन्हें यह विचार अमरीका यात्रा के दौरान मिला था, क्योंकि वहाँ 17 नगरों में पहले से 'भाड़े के पति' मिलने के केंद्र उपलब्ध हैं।

'रेंट ए हस्बैंड' एक ऐसा अस्थायी पति होता है, जो कंपनी को फोन कर देने मात्र पर उपस्थित हो जाता है और घर के वे सभी कार्य खुशी-खुशी संपन्न करता है, जो वास्तविक पति महोदय थके हुए अथवा आलसी होने के कारण नहीं करना चाहते हैं। उदाहरणत: सुबह साढे सात बजे चाय बनाकर बिस्तर में ही दे देना, ख़रीदारी मे सलाह देना और मुस्कराते हुए ख़रीदी वस्तुओं को उठाकर कार तक ले आना, और जब गृहिणी किसी काकटेल पार्टी में जा रही हो तो बच्चों को खिला-पिलाकर सुला देना और बिस्तर तैयार कर प्रतीक्षा करना। इन भाडे के पतियों को जितने समय के लिए चाहो, बुलाया जा सकता है। अलबत्ता उन्हें बीस पाउंड (1300 रुपए) प्रति घंटा की दर से भुगतान करना होता है।

ब्रिटेन मे भाडे के पतियो की माँग बढ़ती जा रही है, क्योकि अकेली माताओं एवं कुँआरी कामकाजी औरतो की बढ़ती सख्या के अलावा ऐसे जोडों (ब्याहे अथवा केवल साथ रहनेवाले) की सख्या भी बढती जा रही है, जिनमे पुरुष देर तक काम पर रहने अथवा स्वभाववश आलस्य के कारण घर के कामकाज मे हाथ नहीं बँटाता है और पत्नी को असंतोप का कारण देता है।

पूछताछ करने पर भाड़े के पति की सेवाओ से ग्राहक महिलाएँ प्राय: सतुष्ट पाई गई है और उन्होंने उनकी प्रशसा की है। अमरीका मे चौदह सौ पुरुषो की 'भाड़े का पति' बनने की अर्जियाँ लबित पड़ी है, जिन पर कंपनी वाले विचार कर रहे है। पोर्टलैंड मेन के जिम ह्विटमोर का, जो 'भाडे के पति' हैं, कहना है कि वह घर के वे सभी कार्य करते है, जो एक पत्नी के सहयोगी स्मार्ट पति को करने चाहिए। जिम अपना पूरा जीवन 'भाड़े का पति' ही बने रहने का इरादा रखते है।

जिम ह्विटमोर के अनुसार 'भाड़े का पति' सेवा हेतु बुलाए जाने पर कभी-कभी वास्तविक पति ईर्ष्या अनुभव करते है। दूसरी ओर डेनिएल केरी (आयु 31 वर्ष) का, जो अभी तक तीन 'भाड़े के पति' रख चुकी हैं, कहना है कि यद्यपि प्रारंभ मे 'भाडे का पति' बुलाने पर उनके पति को आश्चर्य हुआ था परतु अब वह भी उनकी आवश्यकता स्वीकार करने लगे हैं। मार्क हौकिन्स के अनुसार कभी-कभी ऐसा भी होता है कि यदि वास्तविक पति किसी कार्य को करने हेतु उठने में देरी करते हैं, तो पत्नियाँ उन्हे धमकी दे देती हैं कि अभी 'भाड़े के पति' को बुला लूँगी और महाशय तुरत उठकर कार्य करना आरंभ कर देते है।

❑

स्वभैंसगार

अँग्रेज़ी भाषा का एक शब्द है 'सब्सिडी' जिसका प्रशासकीय भाषा में हिंदी मे अनुवाद किया है 'अनुदान'। 'सब्सिडी' मे किसी को दी जाने वाली किसी वस्तु अथवा सेवा में दान का एक अंश होता है, जिसे हमारे देश के जनसेवकों ने अनुदान (छोटा दान) बड़ी सफ़ाई से बना दिया है। मेरा विचार है कि जब प्रथम बार 'सब्सिडी' का प्रयोग प्रशासकीय-वृत्त में हुआ होगा और प्रशासकीय अधिकारियों से इस शब्द का हिंदी अनुवाद करने को कहा गया होगा, तभी उनके मस्तिष्क मे इसे 'छोटा दान' बनाने की योजना बन गई होगी और इसीलिए उन्होंने इसकी हिंदी 'अनुदान' बना दी। फिर अरबो रुपए की ऐसी योजनाएँ बननी आरंभ हो गई होंगी, जिससे यह दान लाभार्थी व्यक्ति के लिए छोटा और जनसेवको के लिए बड़ा साबित हो सके।

यूँ बात कोई ख़ास नहीं है और फिर ऐसी बातें तो होती ही रहती है पर बात बस इतनी है कि हमारे स्वतंत्र देश के चतुर प्रशासन ने सीधे-सादे प्रेमचदी ग्रामीणों की अच्छी-ख़ासी प्रतिशत को तीन-चार दशको में चार सौ बीसी में चाकचौबंद बना दिया था। स्वतंत्रता-प्राप्ति के पश्चात् कान्वेंटों में पढ़े प्रशासकीय अधिकारियो को हारवर्ड मे पढे अर्थशात्रियों ने बताया कि भारतवर्ष के गाँवों में बडी बेराज़गारी है और जो ग्रामीण खेती के दिनों में रोजगार में व्यस्त भी रहते हैं, वे भी शेष दिनों मे बेराज़गार रहते हैं, इसलिए उन्हें वर्ष-भर रोज़गार में व्यस्त रहना सिखाना चाहिए। चूँकि बात 'सही' ढंग से कार्यान्वित किए जाने पर उन

जनसेवकों-सहित बहुता को लाभकारी हो सकती थी, इसलिए फ़ाइल पर आदेश हुआ, 'अविलंब स्वरोज़गार योजनाएँ प्रस्तुत की जाएँ।' और बन गई मत्स्य-पालन योजना, मधुमक्खी-पालन योजना, कुक्कुर-पालन, भैंस-पालन योजना आदि-आदि। सीमित साधनों को ध्यान में रखते हुए इन योजनाओं द्वारा अनुसूचित जाति व जनजाति के परिवारों को 'लाभान्वित' करने का लक्ष्य बना और प्रत्येक लाभार्थी को सुविधा हेतु ऋण एवं 'सब्सिडी' देने का प्रावधान किया गया। यह बात अलग है कि योजनाएँ बनानेवालों को या तो ज्ञात नहीं था अथवा उन्होंने जानना न चाहा हो कि मछली पालने के लिए तालाब में पानी भरा रहना आवश्यक होता है या भैंस खरीदने हेतु लिया हुआ ऋण तभी चुकाया जा सकता है, जब गाँव में उसके दूध का ख़रीददार उपलब्ध हो और लाभग्राही के पास उसे चारा खिलाने की सामर्थ्य हो।

इन योजनाओं के प्रचार-हेतु सरकारी खर्च पर कमिश्नरों व कलेक्टरों आदि हस्तियों के ख़ूब दौरे हुए और सरकारी कर्मचारियों ने गाँव की पढ़ी-लिखी उच्चजातियों को जब योजनाओं और उनके वृत्तछिद्रों (लूपहोल्स) को भली-भाँति समझा दिया, तो मेरे गाँव में भैंस ख़रीद अभियान छिड़ गया। रामदीन, श्यामा, कढ़ोरे, बड़े, तुतुआ (सभी जाटव), छगा, माँगे, हरीराम (सभी धोबी) पट्ठे व छुन्ने (वाल्मीकि) आदि सब के प्रार्थना-पत्र ले लिए गए। सभी लाभार्थियों की औचित्य रिपोर्ट आनन-फानन में लेखपाल द्वारा दे दी गई, घोडा-डाक्टर ने सभी खरीदी जानेवाली भैंसों को स्वस्थ होना पाया, पशु-मेले में सभी भैंसों की क्रय रसीद बन गई और स्थानीय बैंक मैनेजर ने सभी को ऋण और अनुदान की राशि निर्गत कर दी और यह सब करने में किसी ने किसी की हक-तलफ़ी नहीं की। हक़ के अनुसार अनुदान-राशि का केवल दस प्रतिशत लेखपाल ने लाभार्थी को उचित बनाने हेतु, दस प्रतिशत घोडा डाक्टर ने भैंस को स्वस्थता का प्रमाण-पत्र देने हेतु, दस प्रतिशत मेला कर्मचारियों ने विक्रय प्रमाण-पत्र देने हेतु, दस प्रतिशत बैंकवालों ने धनराशि अवमुक्त करने हेतु लिए। चूँकि किसी प्रकार की जाँच होने पर पूरी प्रक्रिया को पाक-साफ़ घोषित करने का गुरुतर भार प्रायः तहसील

स्तर के अधिकारियों पर होता है, अतः उनके हक का तीस प्रतिशत उन्हे चुपचाप पहुँचा दिया गया। हालाकि इसमें से दस प्रतिशत उच्चाधिकारियो को पहुँचाने हेतु लिया जाना बताया गया। इस समस्त आयोजन को सफल बनाने हेतु को-आर्डिनेटर के रूप में मेरे गॉव के फौजदार शर्मा ने कडा परिश्रम किया था, अतः दस प्रतिशत उनका हिस्सा उन्हे दिया गया। अनुदान का शेष बीस प्रतिशत एवं ऋणराशि पाकर लाभार्थी भी प्रसन्न थे कि इस साल कुछ दिन तक खाने-पीने का खर्च चलाने के लिए अनाज उधार लेने नहीं जाना पड़ेगा और फौजदार शर्मा का पिछला ऋण भी कम-से-कम आशिक रूप से चुकता हो जाएगा।

अब आप पूछेंगे कि जब सभी अनुसूचित जातिवालो के यहाँ मुर्रा भैसे बाँधकर उन्हे स्वरोज़गारी बना दिया गया, तो यह अनाज उधार लेने की बात क्यों। तो भैए, इसका गूढ रहस्य मुझे तब उजागर हुआ, जब मै अपनी नौकरी से छुट्टी लेकर गॉव गया। कढोरे और हरीराम, जिनके पास अपनी दो-दो बीघा जमीन थी, एक तुड़ा-मुडा कागज़ लेकर मेरे पास आए और पूछा, 'भैया, जू का है' मैंने पढ़कर बताया कि यह तो बैंक वाले ने तुम्हारा खेत नीलाम करने की नोटिस भेजी है। विस्तार से पूछने पर उन्होंने पूरी बात बताई कि फ़ौजदार शर्मा ने उससे एक फार्म पर यह कहकर अँगूठा लगवाया था कि सरकार ने तुम लोगों के भले के लिए योजना चलाई है और फिर छः हज़ार रुपए दिलाए थे।

मैंने पूछा, 'तुमने उससे जो भैस खरीदी, उसका क्या हुआ? उसे बेचकर शीघ्र कर्जा चुका दो।'

'भैस हमने कहाँ खरीदी। भैंस तो उनमें से किसी ने नही ख़रीदी जिन्हे रुपए मिले। भैंस तो बस एक फौजदार शर्मा की थी, जिसे बार-बार खरीदना व बेचना दिखाया गया था।'

'फिर पाए हुए रुपए का क्या हुआ?' मैने पूछा।

'सभी रुपया पानेवाले व्यक्ति बड़े लोगों के क़र्जदार थे। किसी न उसे चुकता कर दिया और किसी ने उसका ब्याज चुकता कर दिया। हम दोनों का रुपया भी फ़ौजदार शर्मा का क़र्ज चुकाने में निकल गया।'

मैं जानता था कि मेरे ग्राम के इन ग़रीब लोगों के साथ जो हुआ

है, उसका निराकरण अत्यन्त कठिन है और जिन लोगों ने किया है उनको दडित कराना भी उतना ही कठिन है। सभी कागज़ी कार्यवाही 'नियमानुकूल' की गई होगी और फिर भारत में मौखिक गवाह प्राय: या तो हाकिमो के सामने तक पहुँचते-पहुँचते स्वयं ही बदल जाता है अन्यथा हाकिम लोग वकीले सफ़ाई की 'अकाट्य' दलीलों के सामने उन्हें बेहिचक अविश्वसनीय मान लेते हैं। फिर भी इन निरक्षर, निरीह एवं निर्बल लोगों को सांत्वना देने-हेतु मैंने उनकी एक अर्जी लेकर जिला कलेक्टर को भेज दी।

सो अन्य गॉवो मे चाहे जो भी हुआ हो, मेरे गाँव की 'स्वभैंसगार' योजना का परिणाम यह हुआ है कि तथाकथित लाभार्थियों का लुटिया-डडा भी नीलाम हो रहा है।

❑

एरिस्टो-डौग होटल

अँग्रेज़ी मे कहावत है, 'एवरी डौग हैज हिज डे'। पता नहीं अँग्रेज़ों ने यह कहावत क्यों बनाई है, क्योंकि मुझे लगता है कि अँग्रेज़ो के यहाँ तो 'एवरी डे इज़ ए डौग्स डे'। वहाँ आदमी-औरतों को तो कड़ी मेहनत करनी पड़ती है तब कहीं अच्छा खाना-पानी व कभी-कभी 'हौली डे' का मज़ा मिलता है लेकिन कुत्ते-कुतियों को तो बस मालिक-मालकिनों की गोद में उछलकर बैठ जाने व दिन मे चार-छ: बार उनका मुँह चाट लेने-भर मे चुनिंदा खाना, भरपूर सेवा और प्यार मिल जाता है। अपने बरमिंघम-प्रवास के पहले दिन जब मैंने टी.वी. पर कुत्तों को ऐसे गोरे गालों को चाटते देखा, जिन्हें चूमने को हिंदुस्तानी देवता भी स्वर्ग में तरसते होगे, तो मैंने अपने मनुष्य के रूप में पैदा होने के दुर्भाग्य पर माथा पीट लिया। परंतु फिर सोचा कि ऐसा तो केवल टी वी पर ही होता होगा, घर-घर मे नहीं। अपने हिंदुस्तान में भी तो फिल्मी हीरो को खुद के चोर-उचक्का होने पर भी उछलते-कूदते हुए सुंदरतम् हीरोइनें मिल जाती हैं।

दूसरे दिन मेरे मेजवान डा प्रमोद मिश्रा ने मुझे अपने सहकर्मी, पड़ोसी व दोस्त डा.डेविड हार्ट से मिलाया। डेविड साहब से धीरे-धीरे मेरी दोस्ती हो गई, क्योंकि हम दोनों को साथ टहलने का शौक था और टहलने के बाद डेविड साहब मुझे अपने घर में चाय पिलाते थे। डेविड साहब सबेरे टहलते वक्त अपने साथ अपनी कुतिया को भी टहलाने ले जाते थे। टहलाने का खास मकसद होता था, उसे पास के एक नाले के

किनारे ले जाकर झाडियों में शौच कराना। पहले दिन मैंने देखा कि डेविड साहब एक हाथ में कुतिया के पट्टे का फ़ीता पकडे हुए थे और दूसरे हाथ में प्लास्टिक का एक थैला। मैंने उत्सुकतावश कहा कि इस थैले का क्या होगा तो बोले कि कुतिया को फुटपाथ पर ही हाजत लग जाए, तो उसकी विष्ठा इसी में भर लेगे और कूड़ेदानी में फेक देगे। रास्ते में गदा छोड़ देने पर फ़ाइन हो जाएगा। टहलकर लौटने पर डेविड साहब ने कुतिया को ट्वाइलेटपेपर से सौंचाया। फिर एक सुदर से डिब्बे से डौग-फूड निकाला और एक बान-चाइना के डिब्बे में रखकर फ्रिज से दूध निकालकर उसमें मिलाया। फिर बड़े अदब से कुतिया से अनुनय-विनय की, तब वह चलकर आई और उन पर एहसान-सा करते हुए नाश्ता किया। उस समय डेविड साहब उसे ऐसे प्यार से देख रहे थे जैसे सभवत: कभी अपने पुत्रो को भी नहीं देखा होगा। जब कुतिया नाश्ता कर चुकी तो डेविड साहब ने उसके मुँह को गरम पानी मे धोया और नैप्किन से साफ किया। फिर फुर्सत मिलने पर मुझसे चाय को पूछा। पहला दिन होने के कारण यह सब देखकर मुझे मतली-सी आ रही थी, इसलिए मैंने चाय को मना कर दिया, तो डेविड साहब सोफ़े पर मेरे सामने बैठ गए और मुझसे हिंदुस्तान के मौसम के बारे मे पूछने लगे। तभी वह कुतिया उछलकर उनकी गोद में बैठ गई और पहले तो उन्हें यहाँ-वहाँ सूँघती रही और फिर उनके हाथ चाटने लगी। डेविड साहब कुतिया के प्यार मे अभिभूत हो गए और मुझे बताने लगे कि वह जर्मनी की असली नस्ल वाली कुतिया है और बहुत ही संवेदनशील है। पहली बार जब वह हौली डे पर स्पेन गए थे और उसे 10 पाउण्ड (650रु.) प्रतिदिन की दर से बैड एवं ब्रेकफास्ट वाले कनेल-क्लब में छोड़ गए थे तो उसने लगभग अनशन कर दिया था और मौन-ब्रत भी धर लिया था। उनके लौटने पर ही भरपेट खाना खाया था और वह भी उनके द्वारा मान-मनुहार करवाने के बाद ही।

मैंने डेविड साहब के घर से आकर जब डा.प्रमोद मिश्रा को यह सब हाल सुनाया, तो उन्होंने कहा कि यहाँ रिवाज़ है। कुत्ते-बिल्लियों की देखभाल के प्रति शासन का रवैया भी बड़ा सख़्त है। अगर कोई इन्हे

भूखा रख या इनकी मारपीट कर दे और क्रुएलिटी टु एनीमल की शिकायत कोई टेलीफ़ोन से भी कर दे तो तुरत जाँच प्रारंभ हो जाती है और फ़ाइन के अतिरिक्त सजा भी हो जाती है। मैंने पूछा कि डेविड साहब के यहाँ कोई दिखाई नहीं दिया, क्या अभी तक कुँआरे है। डा प्रमोद ने बताया कि शादी तो हुई थी और एक बेटा व एक बेटी भी है। पिछले साल बीवी इसलिए छोडकर चली गई कि सोते समय डेविड साहब की नाक बजती है और बेटा 12वाँ पास करने के बाद यह कहकर अलग रहने लगा कि वह फुटबाल के जिस 'क्लब को सपोर्ट' करता है उसके डैड उसके प्रतिद्वंद्वी क्लब को सपोर्ट करते है। बेटी का 'ब्याय-फ्रेंड' लदन मे है इसलिए वह उसके साथ रहने चली गई है। डेविड साहब की सबसे वफ़ादार साथी उनकी कुतिया ही तो है।

मैं कुत्ते-बिल्लियो के विषय मे अपनी इस नई जानकारी से उत्पन्न आश्चर्य पर काबू पाने की कोशिश कर ही रहा था कि एक दिन बी.बी सी. के बिग-ब्रेकफास्ट कार्यक्रम में 'एरिस्टोडौग होटल' के विषय मे बताया जाने लगा। वह सब देख-सुनकर मेरे कान खुले रह गए और ऑखें फटी रह गई। होटल के रिसेप्शन पर टेलीफ़ोन, फैक्स, कंप्यूटर और ग्राहको (कुत्ते-बिल्ली) तथा उनके मालिकों को अटेंड करती एक बडी स्मार्ट, रिसेप्शनिस्ट बैठी थी। कुत्तों के कमरों में गद्देदार बैड तो थे ही, साथ में बैठने के लिए सोफ़ा, झूलने के लिए झूला एव अपने को निहारने के लिए ड्रेसिंग-टेबिल भी करीने से लगे हुए थे। एक कोने में टेलीफ़ोन तथा सी.डी. प्लेयर शोभायमान हो रहा था, जिन्हें कुत्तो के टेस्ट के अनुसार उचित समय पर ऑन किया जाता था। बीच में दरी पर उनके खेलने-हेतु महँगे-महँगे खिलौने रखे हुए थे, जिनमें किसी की कीमत बीस पाउंड थी तो किसी की पचास। शौक़ीन मिज़ाज कुत्तों के लिए सर पर लगाने को पॉच पाउंड की टोपी, पहनने को बीस पाउंड की ड्रेस और ऑखों पर लगाने को 10 पाउंड का चश्मा रखा हुआ था। उन्हे नहलाने हेतु स्पेशल शावर थी, जिसमे गर्म व ठडे पानी के इतज़ाम के अलावा तरह-तरह के खुशबूदार शैम्पू रखे थे। एक सफ़ेद कुतिया को एक गोरी स्त्री बड़े प्रेम से पुचकार-पुचकारकर नहला रही थी। फिर कुत्तों का सैलून दिखाया गया, जिसमें एक विषेशज्ञ नाई कुत्तों के बाल काटकर

सुंदर डिजाइन बना रहा था। वह बड़ी सफ़ाई से उनके नाख़ून भी काट रहा था। एक कमरे में कुत्तों के डाक्टर उनके कान से किलनी या संभत: कान का मैल निकाल रहे थे, उनकी आँखों का कीचड़ पोंछ रहे थे और उन्हें विटामिन की गोलियाँ खिला रहे थे। कुत्तों के ड्राइंग-रूम में उनके बैठकर (या चल-फिरकर) गपशप करने का प्रबध था। वैसे अँग्रेजों की तरह अँग्रेज कुत्ते साधारणत: अजनबियों से बात नहीं करते है, अत: ड्राइग-रूम ख़ाली-सा था।

अंत मे हमें बताया गया, कि कुत्तों का यह फ़ाइव-स्टार होटल काफी 'रीजनेवल' किराए वाला है। प्रति कुत्ते के बैड-ब्रेकफास्ट का किराया केवल पच्चीस पाउड प्रतिदिन है और अन्य खाने-पीन का खर्च 10 पाउंड प्रतिदिन अतिरक्त है। इस प्रकार केवल तीन हज़ार रुपए प्रतिदिन का ख़र्चा आता है।

अब आप ही बताइए, अगले जन्म में ईश्वर से हिंदुस्तानी मनुष्य का जन्म माँगना बुद्धिमानी होगी या अँग्रेज़ी कुत्ते का।

❑

इंग्लिदी

इस वर्ष लदन मे 14 सितबर से 18 सितबर तक आयोजित विश्व हिंदी-मम्मेलन मे कोई ऐरे-गैरे-नत्थू-खैरे तो आमत्रित नहीं किए गए थे, जो मैं आमंत्रण पाकर अपने को हिंदी का माना हुआ सेवक समझने का गर्व न करता। मैं 13 सितंबर को ही लंदन पहुँच गया था। यद्यपि आयोजकों ने मेरे रुकने का सामूहिक प्रबध किया था परतु मैं रिचमड हिल पर रहनेवाल एक मित्र के घर पर रुक गया। मेरे कमरे की खिडकी से टेम्स नदी की छटा देखते ही बनती थी। ढलान पर बने लॉनों के पार टेम्स मंथर गति से बहती थी और उसके बाएँ किनारे पहाडी पर बना एक ऊँचा-मा चर्च और दाहिने किनारे पर दूर तक फैला घना जंगल ऐसे लगत थे जैसे कुशल चित्रकार की तूलिका ने बड़े मनोयोग से चित्रित किए हो।

यद्यपि 14 सितबर स 16 सितबर तक की प्रतिदिन की गतिविधियो में मैंने बडी रुचिपूर्वक भाग लिया था, परंतु फिर भी मन मे एक चोर छिपा-सा लगता था कि सम्मेलन अपने उद्देश्य मे पता नहीं सार्थक एव सफल है भी अथवा नहीं। कहते है कि मन का चोर कभी-कभी सत्य को उजागर करनेवाला भूत बनकर प्रकट हो जाता है। समापन-दिवस क एक दिन पूर्व 17 सितबर को प्रात: रिचमंड स्टेशन पर अंडरग्राउड ट्रेन पकडकर मैं होबर्न स्टेशन पर उतर गया था और वहाँ मे पैदल ही इंडिया हाउस- ऑल्डविच (भारतीय उच्चायुक्त का कार्यालय) इस आशा से चला गया था कि सभवत कोई जाना चहरा वहाँ मिल जाए पर

मे, जहाँ विश्व हिंदी सम्मेलन आयोजित था, जा चुके थे। मैं औल्डविच पर बस पकडकर वहाँ के लिए चल पड़ा। उस दिन सुबह स अच्छी धूप निकली थी और वह लदन की शीतलता को कुनकुना वना रही थी। बस के नंबर में भूल हो जाने के कारण मैं वेस्टमिंस्टर चौराहे पर पहुॅच गया और वहीं उतर पडा। वेस्टमिंस्टर के चौराहे पर पहुँचने पर बाएं स्थित वेस्टमिंस्टर की भव्यता और दाहिने स्थित वेस्टमिस्टर ऐबी की सुरम्यता देखते हुए मै स्तब्ध होकर खड़ा था कि पीछे से मुझको संबोधित किसी की आवाज़ ने चौंका दिया, 'टुम इंडिया से आया हैं?'

मैंने मुड़कर देखा कि वह एक अत्यंत बूढ़ा अँग्रेज था और ऐसी वेशभूषा पहने था, जैसी मैंने अपने स्कूल की किताबो मे अॅग्रेज़ शासको को पहने देखी थी। यद्यपि वह मुझसे हिंदी मे बोला था; परतु मुझे ऐसा लगा कि हिंदी में उत्तर देने मे कही वह अँग्रेज यह न समझ ले कि मै कम पढा-लिखा देहाती हूँ, इसलिए मै सम्मानपूर्वक बोला, 'यस सर'। चूँकि वह हिदुस्तान का शासक-जैसा दिखनेवाला गोरा था, अत: मेरे मुॅह मे उसके लिए 'सर' निक़लना स्वाभाविक ही था।

'टुम क्या देख रहे हो? वेस्टमिंस्टर?' उसने गर्व के भाव से कहा।

'यस सर। बट आई हैव टु गो सून टु पार्टिसिपेट इन दी वर्ल्ड हिंदी कान्फरेंस।' मैंने घड़ी मे समय देखते हुए कहा।

मेरी बात सुनकर वह बूढ़ा जोर से हॅसा और बोला, 'ओह वर्ल्ड हिंदी कान्फरेंस। आई हैव आल्सो कम फ्राम एफार टु नो द आउटकम।' फिर उसने मुझे विश्व हिंदी सम्मेलन के आयोजन-स्थल जाने की बस का नम्बर बताया और मै 'थैंक्यू सर' कहकर चलने लगा तो वह फिर हॅसा और बोला, 'दी प्रोसीडिंग्स आफ दी कान्फरेंस मस्ट बी ए ग्रेट फन।'

उस दिन सम्मेलन-कक्ष में बैठकर मेरा मन सम्मेलन की कार्यवाही मे कम लग रहा था और उस बूढ़े द्वारा कहे शब्द बार-बार याद आ रहे थे। इसका एक कारण यह भी था कि अधिकतर वक्ता प्राय: हिंदी को राष्ट्रभाषा की प्रतिष्ठा न दिए जाने, राजभाषा के रूप में भी हिंदी का यदा-कदा ही प्रयोग किए जाने, विज्ञान, तकनीकी, सूचना-प्रसार एव

व्यापार के क्षेत्र मे हिंदी क समुचित शब्दकोश तक का विकास न किए जाने एव इलैक्ट्रॉनिक मीडिया के क्षेत्र मे हिंदी के स्थान पर प्रायः इंग्लिश के शब्दों के प्रयोग किए जान की स्थिति को विभिन्न प्रकार के शब्दावरण पहनाकर दुहराते रहे थे परतु कोई ऐसा ठोस समाधान नही दे रहे थे अथवा ऐसा मार्ग नहीं दिखा रहे थे कि हिंदी को विश्व-भर मे नहीं तो कम-से-कम भारत में तो प्रतिष्ठा एवं सम्मान का स्थान प्राप्त हो सके। सम्मेलन की कार्यवाही लंबे-लंबे भाषणों के साथ सायकाल देर तक चलती रही और जब समाप्त हुई तो मेरा मन कहीं एकात मे कुछ पल बिताने को बेचैन हो रहा था।

सम्मेलन-कक्ष से बाहर निकलकर मैंने पाया कि आकाश मे गहरे बादल छाए हुए थे एव बड़े वेग से शीतल वायु बह रही थी। मैं बस से टेम्स नदी के लदन-ब्रिज की ओर चल पड़ा। वहाँ पहुँचकर पुल से नीचे उतरकर टेम्स नदी के किनारे बने पैदल टहलने के मार्ग पर एकांत में रखी हुई एक पत्थर की बेच पर एक किनारे बैठ गया। उस स्थान से टावर-ब्रिज साफ दिखाई दे रहा था और मैं टावर-ब्रिज को खुलकर ऊपर उठते हुए और उसके नीचे से निकलते हुए जहाज़ को तन्मयता से देख रहा था कि मुझे लगा कि मेरी बेच के दूसरे कोन पर कोई अन्य व्यक्ति आकर बैठ गया है। मैं उसकी ओर मुड़ ही रहा था कि मुझे चौकाते हुए वह बूढ़ा बोल पड़ा, 'कैसी रही वर्ल्ड हिंडी कान्फरेंस इन लडन?'

मैं उस घटाटोप बादलों से घिरी रात में टेम्स के किनारे के उस एकात मे उस बूढ़े के पुनः अचानक मिल जाने से आश्चर्यचकित हो गया और कुछ-कुछ भयभीत भी। उसके स्वर मे भी व्यग्य एवं गर्व का ऐसा मिश्रण था, जिसका अभिप्राय मैं नहीं समझ पा रहा था। फिर भी अपने मनोभावों पर किसी तरह नियत्रण रखकर मैंने उत्तर दिया, अच्छी थी। हिंदी को समुचित प्रतिष्ठा न प्राप्त होने एवं उसका पर्याप्त प्रसार न होने के विषय मे काफ़ी चर्चा हुई।'

बूढ़ा मेरी बात सुनकर जोरदार ठहाका लगाकर हँसा। टेम्स के बहत पानी की कलकल पर उसकी हँसी की आवाज़ ऐसे गूँजी जैसे बरसात मे पर्वतों पर बहते झरने के राग पर भूस्खलन की दहाड़ हावी हो जाती है।

फिर वह बोला, 'मै जानता था। जानता था यही होगा।'

मै अपनी घबराहट एवं जिज्ञासा कठिनाई से रोक पा रहा था, इसलिए स्वत: बाल पडा, 'सर, आप कैसे जानते थे?'

वह बोला, 'यजुर्वेद के बीसवें चैप्टर की पचीसवी ऋचा मे लिखा है– 'राष्ट्र के ज्ञानी और शूर पुरुष एक विचार से राष्ट्रहितकारक कार्य करते रहें और आपस मे विरोध न खड़ा करे, इसी से राष्ट्र का हित होगा और जनता का कल्याण होगा।' इंडियन्स ने यह यजुर्वेद शायद ही पढा और समझा हो, लेकिन मैंने उन्नीसवीं सेंचुरी में पढकर समझ लिया था कि इडियन्स एक विचार से न सोचे, इसके लिए जरूरी है कि उनमे हिडी भाषा के लिए प्रेम और गर्व न रहने दिया जाएँ। इसीलिए मैंने ब्रिटिश गवर्नमेंट को सिफ़ारिश की थी कि हिंदुस्तानियों को अँग्रेजी शिक्षा-दीक्षा देकर एक ऐसे लोगों के वर्ग का निर्माण किया जाना चाहिए, जो रग और रक्त में हिंदुस्तानी हो, कितु अपनी रुचियो, अपने चिंतन, अपने चरित्र और अपनी बुद्धि मे एकदम अँग्रेज।'

इस बूढ़े की गर्वोक्ति का प्रसग एव आशय अब गूढ़तर एव अधिक रहस्यमय होता जा रहा था और मेरे हृदय की धडकन बढा रहा था। साथ ही उसकी निकटता से अब मेर रोंगटे खडे हो रहे थ पर न तो उस निर्जन स्थान से भाग पाना संभव प्रतीत हो रहा था और न किसी को सहायता-हेतु बुला पाना।

एक क्षण साँस लेकर वह बूढ़ा फिर बोलने लगा, 'तुम्हारी गीता भविष्य को देखने व समझने की दृष्टि देती है, पर टुममें से कितनो ने उस पढ़ा है? वह तो मैंने पढ़ी थी और मैंने उसका भरपूर उपयोग भी किया था। टुम हिंदुस्तानी लोग समझते होंगे कि गोरों से आज़ादी पाकर तुम आज़ाद हो गए हो। पर मैंने तभी अपनी पॉलिसी से हिंदुस्तान में ऐसे काले अँग्रेज पैदा कर दिए थे, जो हिंदुस्तान की किसी भी भाषा को न तो राष्ट्रभाषा का सम्मान देने देंगे और न अँग्रेजी के समान उस पर गर्व करेंगे। हम तो इडिया मे व्यापार करके ज़्यादा-स-ज्यादा प्राफ़िट (लाभ) कमाने आए थे। वह प्राफ़िट अँग्रेज़ अब भी उठाता है और उठाता रहगा, क्योंकि मैंने ऐसे बीज वो दिए थे कि सिर्फ अँग्रेजी जानने वाल दो-तीन

परसट हिंदुस्तानी हो हिंदुस्तान की अ   और सत्ता पर छाए रह पहले हमने इन काले अँग्रेजों को हिंग्लिश सिखायी थी, जिससे वे हमारे स्वामिभक्त बनकर बाकी हिंदुस्तानियों को नीची निगाह से देखें और अब वही लोग टी.वी. सीरियलों में धड़ाधड इंग्लिदी बोल रहे हैं, जिसमें हिंदुस्तानियों की नई पीढ़ी हिंदी-भाषा को प्राय: उपहास और अपमान की वस्तु समझती है। ये लोग हिंदी-संस्कृति में भी नई पीढी में अधिक-से-अधिक वितृष्णा पैदा कर रहे हैं। हिंदुस्तानी पहले गोरे अँग्रेजों का गुलाम था- 'अब काले अँग्रेजों का है और रहेगा।'

यद्यपि उस व्यक्ति की यह कुटिलतापूर्ण गर्वोक्ति मेरे आत्मसम्मान को ठेस पहुँचा रही थी; परंतु उसमें निहित सत्य को एकदम नकारने में मैं अपने को असमर्थ पा रहा था। उसके साँस लेने हेतु क्षण-भर रुकने पर मैं बोल पड़ा, 'बट, हू आर यू?'

यह सुनकर वह बूढा पुन: अट्टहास करते हुए बेंच से उठकर खडा हो गया और बोला, 'टुम हिंडुस्तानी हिस्ट्री को न तो ठीक से पढते हो और न उससे कुछ सीखते हो। टुम लॉर्ड मैकाले को जाने व समझे बिना ही वर्ल्ड हिंडी कान्फरेंस के आयोजन-मात्र से हिंडी को प्रसारित एवं प्रतिष्ठित करना चाहते हो?'

फिर मेरे पलक झपकाते ही वह बूढ़ा अंतर्धान हो गया, पर उसका अट्टहास टेम्स की लहरों पर दूर तक तैरता रहा।

❑

फ़ितरत-ए-मौत

पैदाइश एक कसरत है तो मौत एक फ़ितरत। किसी के पैदा होने के लिए कसरत दूसरों को करनी पडती है और अगर वे ऐसी कसरत करने मे इन्कार कर दें, तो कोई पैदा ही नहीं होगा, लेकिन मौत अपनी खुद की फितरत है, और वह सबके पास आती है चाहे कोई उसे बुलाए या न बुलाए। इतना ही नहीं, अगर आप कभी पैदा होने की सोच या अपनी पैदाइश टालने की सोचे, तो आपके हज़ार हुनर बेकार हो जाएँगे, लेकिन अगर कभी मरने का इरादा करे तो शुक्र खुदा का कि लम्हे से लेकर महीनो की मौत, खामोश विदाई से लेकर चीख़-कराहो से भरी मौत और इज़्ज़तदार मौत से लेकर कुत्ते की मौत तक बिना कोई ख़ास तिकड़म किए हासिल हो जाएगी।

पर इसका यह मतलब कतई नहीं हैं कि मरना कोई आसान काम है। खुद मरने के लिए भी इसान को हजार पापड़ बेलने पड़ते हैं और कही बच गए तो धारा 309 आई.पी.सी के तहत जेल की हवा खानी पड़ती है। मान लीजिए आप जवान हैं और हस्बमामूल मुआ दिल किसी हुस्ना को पेश कर दे, पर उस हुस्ना के पास दिल रखने की जगह पहले से भरी हुई है या उसे आपका दिल सँजोकर रखने-जैसी चीज़ ही नही लगती है या फिर अब्बाजान, अम्मीजान या शौहर के डर के मारे वह आपका तोहफ़ा कुबूल करने की हिम्मत नही कर पाती है और आप ऐसे दुत्कारे हुए दिल को वापस लेने के बजाय उसे नेस्तनाबूद करने की सोचे, तो सारी दुनिया आप की राह में रोड़े अटकाने को कमर कस लेगी।

अलविदा से पहले आप अपने जालिम मोहसिन के नाम एक तहरीर जरूर छोडना चाहेंगे और जहॉ आपने तहरीर लिखी, तभी उस तहरीर को इस तरह छिपाने की नई जहमत आन पडेगी कि वह आपकी जहॉ-पार छलॉग लगाने से पहले किसी के हाथ न पड़ जाए, और साथ-ही-साथ आपकी इस जहॉ से रुख़सती के बाद आपकी ज़ालिम कातिल को जरूर मिल जाए- 'नहीं तो मुर्गी जान से गई और खाने वाले को मज़ा न आया' वाली कहावत सच हो जाएगी। ख़ुदा-न-ख़ास्ता अगर आपकी तहरीर, जो आपने अपने मोहसिन को आपकी रुखसती के बाद सम्हालकर तकिए के नीचे रखकर आँसू बहाने के मतलब से लिखी थी, कहीं पहले ही आपकी बीवी, अब्बा या दोस्त के हाथ पड गई, तो न सिर्फ़ आपकी तदबीर बेकार हो जाएगी बल्कि आपको समझाने-बुझाने और लताड़ने के अलावा आप पर ऐसी चौकसी कायम कर दी जाएगी कि आपको जेल की सलाख़ो मे रहना बेहतर लगेगा। इसके अलावा आपके जाननेवाले तमाम मनचलो को चटखारे लेकर आपकी जगहॅसाई करने का मौका अलग मिल जाएगा। मै मानता हूँ कि अगर आपने बचपन से ही भाई-बहिन की टाफ़ियॉ या स्कूल के साथियो की कॉपी-पेंसिल चुराने और छिपाकर रखने मे महारत हासिल कर रखी है, तो आप अब तहरीर भी सही जगह छिपाने मे कामयाब हो जाएँगे, लेकिन यह तो मंज़िल की बस एक सीढ़ी है। अब सवाल खडा होगा कि शहादत का सबसे आसान और कारगर तरीका क्या होगा? अब अगर आप सोचते है कि रेल के सामने कूदना ठीक रहेगा, तो आपको अपनी कटी-फटी लहू-लुहान बाँहें, टाँगें और धड़ नज़र आने लगेंगे और आप सोचेंगे कि ऐसी तकलीफ़देह मौत से तो ज़िंदा रहना ही बेहतर है। पैट्रोल छिड़ककर माचिस की तीली लगाने मे जिस्मानी तकलीफ का डर तो लगेगा ही, महॅगे पैट्रोल की ख़रीद मे जेब के हल्के होने का ख़याल भी आएगा। संखिया खाकर ऑखे बद करने की तरकीब मे न सिर्फ ज़हमत है बल्कि पकड़ जाने का ख़तरा भी हद दर्जे का है, क्योंकि हो सकता है कि उस दिन दरोगा जी को और कोई 'गुड-वर्क' दिखाने का मौका न मिला हो और आपको ही पुडिया रखने के इल्ज़ाम मे धर लें। फिर तो आप धोबी के गदहे की तरह न तो घर के रहेंगे और

न घाट के। सब तरकीबें सोचने और ख़ारिज़ करने के बाद शायद आप अपनी सायकिल को गोमती पुल के फुटपाथ पर रखकर, हाल मे खरीदी चप्पल का नदी में जाया होने से बचाने के लिए सायकिल के बग़ल मे उतारकर, पुल के बीचो-बीच अकडकर खड़ होकर, और दुनिया क हसीन नजारे- जिनमें छतरमजिल और क्लार्क्स होटल भी शामिल है- आखिरी बार देखकर एक लबी छलॉग लगाना पसंद करेगे। वैसे हो सकता है मेरी बीबी की तरह पानी में डूबने से आपको 'फोबिया' हो और आप इस मंसूबे को भी ख़ारिज कर दे, लेकिन चूँकि आपने अपनी जालिम मोहसिन को छकाकर सताने की ठान ही ली है, इसलिए मैं मान लेता हूँ कि आप इसी तरकीब पर अमल करेगे।

अब बढिए आगे। आप जैसे ही अपना इरादा पक्का कर सायकिल के हैंडिल पर हाथ रखेंगे तो अम्मी झिडक देंगी कि बेटा इस चिलचिलाती धूप मे कहाँ जा रहे हो? अब आप उन्हे कैसे बताएँ कि धूप कम होते ही गोमती-पुल के फुटपाथ पर इतने ठेलेवाले, सब्ज़ी वाले, खोमचे वाले, पालिश वाले आ धमकते है कि आपके सायकिल रखकर चप्पल उतारते ही आपको दबोच लेंगे, क्योकि गोमती मे कूदने के इन नजारों से उनकी अच्छी तरह वाक्फियत पहले से हो चुकी होती है। अगर अम्मी की निगाह से आपने अपने को बचा लिया तो भाभीजान टपक पड़ेगी कि लल्ला ज़रा एक ढोली पान लिए आना, पानदान ख़ाली हो गया है। आप भाभीजान को भी नहीं समझा पाएंगे कि शहादत के लिए सर पर कफन बॉधकर जानेवालो से पान मँगवाना साफ़-साफ़ हिमाक़त है। मान लीजिए कि बिना अम्मी, भाभी, बीवी, अब्बा, आपा या मामू के रोके आप बडी होशियारी मे घर से निकल आए, तो बहुत मुमकिन है कि पडोसी की बिल्ली न सिर्फ़ आपका रास्ता काट जाएगी बल्कि देर तक शक की निगाहों से आपको घूरती भी रहेगी, जैसे कि समझ रही हो कि हो न हो आपकी रूह ज़रूर किसी शम्मा पर परवाने के मानिंद फ़ना होने को तडप रही है। अगर पडोसी की बिल्ली धूप की वजह से कहीं छॉह मे अलसायी पड़ी रहे और आपका रास्ता न काटे, तो नुक्कड की पान की दुकान पर बैठा एक आँख का दिन्नू ही पान पर कत्था लगाते नज़र आ

जाएगा, और फिर इम्तिहाने-आशिक़ी में आपके पास होने में रुकावट पड़ने का शक पैदा कर देगा। लेकिन चूँकि इस नेक काम के लिए आपने पक्का इरादा बना लिया है, इसलिए मैं माने लेता हूँ कि आप दिन्नू की फूटी आँख को नज़रअंदाज करते हुए आगे बढ़ जाएँगे। पर आपने यह तो सोचा ही नहीं कि तेज धूप मे लखनऊ की सड़को का तारकोल पिघलने लगता है और मुआ ऐन मौके पर सायकिल के टायर में चिपककर ट्यूब के पुराने पंचर पर लगी हुई रबड़ की चिंदी को छुड़ा देता है। अब जब सायकिल पंचर हो जाएगी तो आप मरने के लिए धूप में पैदल चलना तो पसंद नहीं करेंगे। ज़रूर आप पंचर जोड़ने की दूकान पर सायकिल लेकर पहुँचेंगे। पर यह क्या, जेब तो खाली है और भला कोई जेब में पैसे भरकर नदी में कूदने थोड़े ही जाता है। पर मैं माने लेता हूँ कि पंचर जोड़ने की दुकानवाला आपकी जान-पहचान का है और आप द्वारा निहायत ज़रूरी काम के नाम पर गिड़गिड़ाने पर पंचर की जुडाई उधारी कर देगा। तब कही पुल की चढाई पर हाँफते हुए पैडल मारकर आप थके-हारे पुल पर पहुँचेंगे। ऐसे में हस्बेमामूल आप ज़िंदगी की आखिरी छलाँग लगाने से पहले कुछ सुस्ताना चाहेंगे और आपने अभी सुकून के चंद लम्हे ही बिता पाए होंगे कि शहर के नजदीकी गाँवों से आनेवाला कोई-न-कोई सब्ज़ीवाला नज़र आने लगेगा। आपको मरने के दिन भी सुकूँ नहीं नसीब होगा और आप दौड़कर सायकिल और चप्पल सहेजकर फुटपाथ पर रख के पुल पर आदमक़द खड़े होकर कूदने का इरादा करेंगे कि तभी बेरहम माशूक की आख़िरी बार याद आ जाएगी और साथ ही आपके ज़ह्न में यह ख़ाका भी खिंचने लगेगा कि आप की लाश बालू मे औंधे मुँह पड़ी है और आपकी माशूका, अम्मी और अब्बा उस पर दहाड़ मारकर रो रहे हैं। हो सकता है कि इस बीच गँवार सब्ज़ीवाला आपको देख ले और दौड़कर दबोच ले, पर अगर आप अपनी मौत के रास्ते मे रुकावट डालनेवालों के बारे में अभी भी चाक-चौबंद हैं तो उसके आपकी कमर मे हाथ डालने से पहले ही आप छलाँग लगा देंगे। पर आपने पहले से यह जानना तो जरूरी नहीं समझा था कि गर्मियो के दिनों में गोमती का ज़्यादातर पानी लखनऊ शहर के प्यासे बाशिंदो को

जिंदा रखने के लिए शहर शुरू होने के पहले ही गऊ घाट पपिंग स्टेशन पर नदी मे बाहर निकाल लिया जाता है। अब लीजिए आप पानी में पहुँच गए है लेकिन वह आपको डुबाने के लिय नाकाफी है। हॉ मैं जानता हूँ कि आपके इरादे मे कहीं कमी नहीं है और आप उतने पानी में भी डूबने म कोई कोर-कसर नहीं छोड़ेंगे, क्योंकि आपन सुन रखा है कि लोग चुल्लू-भर पानी में भी डूब जाते है।

पर ऐसी हालत मे भी आपके जुनून को मंजिले-मकसूद मिलने का एक ही इमकान है कि आपको पकडने के लिए दौड़नेवाला गॅवार कोई ऐसा होशियार दुनियादार हो कि सोचे जाने दो, हमें क्या लेना-देना है, 'कोई सब्ज़ी ख़रीदनेवाला ग्राहक तो था नहीं और फिर इसकी चप्पल भी अपने झुलसते पैरों में फिट आ गई है।' पर अगर कहीं उसके दिमाग में इसानियत से मुहब्बत का फितूर सवार है, तो वह हो-हल्ला करके आपके बकोशिश मरने के शौक को पूरा नहीं होने देगा और आख़िर में आप पुलिस की हवालात मे पड़े ख्वाब देख रहे होंगे कि क्या उस जालिम का दिल अब भी नहीं पसीजेगा।

❑

हिचकियाँ और हिचकियाँ

हिचकियाँ आना एक स्वाभाविक प्रक्रिया है; परंतु हिचकियाँ बद करना एक कला है। विभिन्न प्रकार की हिचकियों का आना अलग-अलग उपायो से बद होता है। मुझे छोटेपन में जब हिचकियाँ आती थीं तो मेरी अम्मा (दादी) कहती थीं कि कोई मुझे याद कर रहा है और दो घूँट पानी पिला के मेरी हिचकियाँ बद कर देतीं थी, परंतु मेरे पाँच साल के पोते को पिछले महीने जब हिचकियाँ आनी आरंभ हुई और मैंने यह कहकर कि उसे कोई याद कर रहा है दो घूँट पानी पिलाया तो उसकी हिचकियाँ और बढ़ गई। जब घंटों तक हिचकियाँ बंद न हुई तो मैंने एक डाक्टर को बुलवा भेजा। पोते साहब नंबरी बुकराद है और उन्हें डाक्टरों से खास चिढ़ रहती है, क्योंकि बार-बार बीमार पड़ने के कारण डाक्टर लोग उन्हे अक्सर इन्जैक्शन लगाते रहते है। उस दिन भी जैसे ही डाक्टर ने उनको अपने पास बुलाया, वह बिदक गए और भागने लगे। डाक्टर का साबका ऐसे बच्चो से रोज़ पड़ता होगा। अत: उन्होने उठकर पोते को अपने पास खीच लिया और झुककर उसके पेट को हाथो से दबा-दबाकर परीक्षण करने लगे। तभी गुस्से में पोते साहब ने अपनी दाहिनी टाँग उठाकर मारी, जो उनकी गंजी खोपडी में लगी और डाक्टर साहब सन्न रह गए। इस क्रिया के साथ ही पोते साहब को हिचकियाँ आना एकदम बंद हो गईं। यह सब इतना क्षणिक हुआ था और संपूर्ण दृश्य इतना हास्यास्पद था कि मैं यह समझ नहीं पा रहा था कि मैं पोते को डाटूँ या डाक्टर से दु:ख प्रकट करूँ या हिचकियाँ बद करने की इस नई कला का आविष्कार

करने हेतु पोते को शाबासी दूँ। डाक्टर साहब भी क्षण-भर मे घटित इस घटना और उसके परिणाम से अवाक् थे। यद्यपि इलाज में डाक्टर साहब की किसी दवाई की आवश्यकता नहीं पडी थी; परंतु उस दिन मैंने उन्हे दुगुनी फीस देकर विदा किया।

हो सकता है कि लगातार हिचकियाँ आना कोई आनुवंशिक मर्ज हो, क्योंकि मेरे बेटे (पोते साहब के बाप) को भी एक बार यह मर्ज हुआ था। देर तक हिचकियाँ बद न होते देख मै उस एक डाक्टर के पास ले गया था। उसने एक खूब कडवी दवा दी थी, जिसे मेरे बेट ने बाद मे चौकलेट मिलने का लालच देने के बाद ही खाई थी, परंतु न तो कडवी दवा और न मीठे चाकलेट से हिचकियों का आना बंद हुआ था। तब मेरे एक मित्र ने बडे आत्मविश्वास के साथ बताया था कि ऐसे मर्जो का इलाज केवल होम्योपैथी में है और एक स्वनामधन्य होम्योपैथ का पता भी बताया था। मैंने बेटे को यह समझाकर कि होम्योपैथी की गोलियाँ मीठी होती है, उसे होम्योपैथ के पास ले जाने को राज़ी कर लिया था। होम्योपैथ महोदय ने मेरे बेटे को बगल के स्टूल पर बिठाकर उससे प्रश्नो की झड़ी लगा दी थी :

– तुम्हे कब से हिचकियाँ आ रही है?

– आज सुबह से!

– उस वक्त तुम क्या कर रहे थे?

– नाश्ता कर रहा था।

– तुम उस वक्त गरम चीज़ खा रहे थे या ठडी?

– न गरम न ठंडी!

– तुम्हे गरम चीजे़ पसंद हैं या ठडी?

– अगर काफी हो तो गरम और आइसक्रीम हो तो ठडी।

– पर दोनों में क्या ज़्यादा पसद है?

– दोनों ज़्यादा पसद हैं।

– तुम्हारा नाश्ता मीठा था या नमकीन?

– दूध मीठा था और दोसा नमकीन।

– क्या तुम्हें हाल में बुखार आया था?

– नहीं!

– जब तुम्हे बुखार आता है तो तुम दायीं करवट लेटना पंसद करते हो या बायीं ?

– बुखार में कोई करवट पसद नहीं आती, बस करवट बदलता रहता हूँ ।

– क्या तुम ....?

होम्योपैथ साहब ने अपना अगला प्रश्न करने के लिए मुँह खोला ही था कि मेरा पुत्र जो देर से अपनी हँसी रोक रहा था, बेतहाशा हँस पडा और उसकी उस हँसी के साथ ही हिचकियो का आना बद हो गया। उस दिन मुझे होम्योपैथ साहब को फीस देना काफी खला था ।

मेरे बचपन में भी एक घटना घटी थी, जिसमें हिचकियाँ बंद करने की एक नई विधि का आविष्कार हुआ था। मैं अपने माता-पिता के साथ जून की दोपहरी में एक खटारा टैक्सी मे बैठकर इटावा से कानपुर जा रहा था । अगली सीट पर ड्राइवर के अलावा एक हट्टा-कट्टा मुच्छड़ बज्र गॅवार पैसेंजर भी बैठा था।

एक जगह पर टैक्सी को हिचकियाँ आने लगी और वह झटके देकर चलने लगी। ड्राइवर ने टैक्सी सडक के एक किनारे पर लगा दी थी और बोनेट खोलकर हिचकियॉ रोकने का उपाय करने लगा- रेडिएटर को पानी भी पिलाया। फिर ड्राइविंग सीट पर लौटकर चाभी घुमाई तो हिचकियॉ उसी तरह आ रही थीं। इसलिए वह फिर उतरकर इंजिन पर ठोक-ठाक करने लगा। हम लोगों का गर्मी के मारे बुरा हाल हो रहा था और सामने की सीट पर बैठे मुच्छड़ का चेहरा गुस्से से लाल हो रहा था। जब दुबारा ड्राइवर क वापस आकर चाभी घुमाने पर हिचकियॉ पुनः आई तो उससे नही रहा गया और वह उतरकर कार के सामने चला गया और 'धस्साले की' कहते हुए इजिन में दो लाते मारीं। उसकी इस हरकत पर मेरा हँसी के मारे बुरा हाल हो रहा था और यह दखकर तो हम सभी की प्रसन्नता का ठिकाना न रहा कि इजिन ने न केवल हिचकियॉ लेना बद कर दिया था वरन् उसकी आवाज़ पहले से अधिक 'स्मूथ' हो गई थी।

शासकीय सेवा के दौरान मुझे एक नए ढग की हिचकियों और

उनके दूर करने की कला का ज्ञान हुआ है। यह है फाइलो के सचालन मे आनेवाली हिचकियाँ। मैंने अमरीका की यूनिवर्सिटी में उच्च शिक्षा हेतु एडमीशन तथा स्कालरशिप प्राप्त कर ली थी और वहाँ जान के लिए नियमो में प्राविधानित 'स्टडी लीव' के लिए मैने एक वर्ष पहले मे अपना प्रार्थना-पत्र सचिवालय को प्रेषित कर दिया था। जब स्मृतिपत्रो के बावजूद छः माह तक कोई उत्तर प्राप्त नहीं हुआ तो मैंने संबंधित संयुक्त सचिव से वार्ता की, जिसने तुरंत आदेश निर्गत करने का आश्वासन दिया।

परंतु जब अगले एक माह तक कोई आदेश नहीं मिला तो मैने एक दूत (कर्मचारी) संबंधित सैक्शन मे भेजा, जहाँ ज्ञात हुआ कि मेरी पत्रावली अभी तक कनिष्ठ सहायक के पास ही हिचकियाँ ले रही है। तब मैंने एक ऐसे आई ए एस अधिकारी से सैक्शन आफ़िसर को शीघ्रता करने को कहलवाया, जिसका उस पर कुछ ज़ोर था। इसक एक माह बाद मेरे पास एक लंबा-सा पत्र आया, जिसमें कई बिंदुओं पर सूचना एव स्पष्टीकरण माँगे गए थे। मैंने उनका उत्तर बिना विलब किए भेजा और इस कसरत के 4 माह बाद मुझे 'स्टडी लीव' पर जाने की अनुमति भी प्राप्त हुई; परंतु इतनी देर से कि संबंधित यूनिवर्सिटी में कोर्स पहले से ही आरंभ हो चुका था और मुझे अपना कार्यक्रम रद्द करना पड़ा। मुझ बाद में पता चला कि पत्रावली की हिचकियों को लक्ष्मी एवं अमूल क प्रयोग से ही समय के अदर दूर किया जा सकता था। वैसे लबे अनुभव के बाद अब मैं जान गया हूँ कि एक अन्य कला भी इसमें बडी कारगर है और वह वही है, जो मेरे बचपन में मेरे साथ टैक्सी में सफ़र करन वाले गँवार ने इजिन के साथ की थी।

❑

पारदर्शिता

आजकल पारदर्शिता का हर क्षेत्र में बड़ा जोर है। आज के विद्वत्जन, प्रशासक, वकील, नेता सभी कहते है कि पारदर्शिता के बिना समाज और देश का सुधार नहीं हो सकता। इसलिए पारदर्शिता आज आधुनिकता का 'सिंबल' (द्योतक) भी बन गई है। कुछ वर्ष पूर्व तक पारदर्शिता की कोई बात करे तो काँच या पानी की याद आती थी, क्योंकि वही दो पारदर्शी वस्तुएँ रोज-रोज दिखाई देती थीं, पर आज किसी नेता के भाषण, किसी अधिकारी के आदेश, साहित्यकार के लेख अथवा किसी निर्णय मे पारदर्शिता का ज़िक्र किया जाता है तो इसका अर्थ होता है घूस लेने के उददेश्य से रखी जानेवाली गोपनीयता की अनुपस्थिति।

पर यदि जनता-जनार्दन के मन में राम और बग़ल में ईंटे हों और अर्थ का अनर्थ हो जाए तो इसमें पारदर्शिता का क्या दोष! हमारी 'फर्टिलिटि' (उत्पादन की क्षमता) का कहीं कोई सानी नहीं है, चाहे वह बच्चों के उत्पादन का क्षेत्र हो अथवा शब्दार्थ निकालते समय बौद्धिक दाव-पेंच लगाकर स्वलाभकारी अर्थो का उत्पादन। इसके चलते पारदर्शिता के भी अनेक अन्य अर्थ चल पड़े है। आज के हमारे विज्ञापनों को ही लीजिए। युवक एवं युवतियों को पानी में झीने वस्त्र पहनाकर अथवा वस्त्र उतारकर विज्ञापनों मे पारदर्शिता का उत्कृष्ट उदाहरण प्रस्तुत किया जा रहा है। इससे हमारी युवा पीढ़ी में पारदर्शिता की भावना की उत्तरोत्तर वृद्धि हो रही है।

हमारे टी.वी. कार्यक्रम हमें अपने व्यवहार को पारदर्शी बनाने का

प्रभावशाली पाठ पढ़ा रहे हैं। जैसे अगर बच्चे को बाप की बात समझ न आए तो कह देगा, 'डोंट बी स्टुपिड, पापा' और बिटिया को मम्मी की बात पसंद न आए तो मुँह पर कह देगी, 'यू आर ए बोर, मम्मी'। बहू द्वारा सास-ससुर का लिहाज़ कर शालीनता से बात करना पारदर्शिता के सिद्धांत के खिलाफ है, क्योंकि इसका अर्थ हुआ कि बहू अपने मन की भड़ास या अपने मुख से निकलनेवाली गाली को बाहर न आने दे और छिपाकर रखे, तो व्यवहार में पारदर्शिता कहाँ रही!

युवक-युवतियों के आपसी व्यवहार में भी ख़ूब पारदर्शिता पनप रही है। जैसे दुपहिए पर पीछे बैठने के समय आगेवाले का खुलेआम चिपका लेना, क्लबों व पार्टियों में काम-पिपासा का पारदर्शी प्रदर्शन करना, विवाह के बिना हमबिस्तर होने को मात्र फ्रेंड होने की संज्ञा देना और यदि विवाह कर लिया हो तो भी अपनी उच्छृंखलता को पारदर्शी रखना और किसी भी दिन एक-दूसरे से छुटकारा प्राप्त कर लेना; और उसके बाद भी गुड फ्रेंड बने रहना।

किसी कार्यालय में जाइए तो पारदर्शिता ही पारदर्शिता नजर आएगी। प्राय: चपरासी, और बाबू से लेकर साहब तक किसी को आप इस विषय में गोपनीयता बरतते नहीं पाएँगे कि आपको अपना कार्य कराने के लिए कितना दाम लगेगा। अब वे ज़माने लद गए, जब साहब ऊँची कुर्सी पर बैठे रहते थे और पेशकार लोग मेज़ के नीचे धीरे से हाथ डालकर आपके बढ़ाए हुए नोट ले लिया करते थे। यद्यपि साहब तिरछी नजर से देख लेते थे कि नोट कड़क है या नहीं, पर ऐसा दिखाते थे कि उन्होंने देखा ही नहीं। नवीन प्रक्रिया पूर्णत: पारदर्शी बना दी गई है। जाइए और साहब से सीधे बात कीजिए और बेहिचक दाम देकर काम कराइए।

हमारी शिक्षा-पद्धति भी अब पारदर्शी हो गई है। पहले जब आप परीक्षा देते थे तो उत्तर पुस्तिकाएँ जाँचकर परिणाम आने तक समस्त प्रक्रिया गोपनीय रखी जाती थी। अब सर्वप्रथम तो छात्रों को स्पष्ट कर दिया जाता है कि उनके द्वारा परीक्षा में प्राप्त होनेवाले अंक अध्यापक को दी जानेवाली ट्यूशन-फीस एवं इग्ज़ाम-कांट्रेक्ट (परीक्षा का ठेका) की राशि के समानुपाती होंगे। परीक्षा का प्रश्नपत्र बनानेवालों एवं छापने वालों

का भी अब पारदर्शिता में विश्वास बढ़ गया है। व प्रश्नपत्र को 'आउट' करके संपूर्ण परीक्षा-प्रक्रिया को पारदर्शी बनाने मे अपना योगदान बडे मनोयोग से देते है।

भाषणो में भी पारदर्शिता का एक नया आयाम जुड गया है। नेताओं के भाषण का असत्य अश आजकल पूर्णत: पारदर्शी होता है। अब उनका विश्वास लुकी-छिपी बात कहने मे नहीं रह गया है और अब उनको इसकी आवश्यकता भी नही रह गई है, जनता-जनार्दन भी पारदर्शी हो गई है। वह नेताओं के भाषणो का असत्य स्पष्टत: समझती है परतु वोट देने के मामले मे उसके सिद्धांत पारदर्शी है कि वोट अपनी जाति-धर्म वाले को दो अथवा अपने को अनुचित लाभ दिलानेवाले को दो।

सरकारी नौकरियो में हमारी चयन की प्रक्रिया भी प्राय: पारदर्शी रहती है। घूस देनेवालों अथवा तगडी सिफ़ारिश लगानेवालों को पहले से पता रहता है कि चुना हमे जाना है, बाकी तो बस नाटक है। विदेशियो ने हमारी पारदर्शिता मे ख़लल डालने के लिए कप्यूटर का आविष्कार कर दिया और हमें कप्यूटर से कापियाँ जाँचना सिखा दिया। इससे कंप्यूटर-विधि से परीक्षा कराने की माँग ने ज़ोर पकड़ा। तब पुरानी प्रकिया से लाभ उठानेवाले नेताओं और अफ़सरों ने पहले इसका इस आधार पर विरोध किया कि कप्यूटर तो एक घोर अंधकारपूर्ण डिब्बा है, उसमें पारदर्शिता का क्या सवाल। पर अब उन्होंने नई तरकीबे निकाल ली हैं। पर्यवेक्षण एव पारदर्शिता बनाए रखने के नाम पर लिखित परीक्षा में वरिष्ठताक्रम मे आनेवाले सभी अभ्यर्थियो की सूची पता-सहित मँगा लो और फिर बिना भेदभाव किए सूची के सभी अभ्यर्थियों से चयन-शुल्क जमा करा लो। जो अभ्यर्थी साक्षात्कार के उपरात चयनित हो जाएँ, उनका चयन-शुल्क मार लो और शेष में यदि कोई वापस माँगने का साहस कर सके तो पारदर्शिता की रक्षा करते हुए उसे वापस कर दो।

संपूर्ण संसार हमारी तीक्ष्ण बुद्धि का लोहा कोई यूँ ही थोड़े ही मानता है।

❑

श्वेत क्रांति

हमारा देश क्रातियो के युग से गुजर रहा है।

पहले एक स्वतंत्रता की क्राति आई थी, जिसने अँग्रेज़ों क शासन को उखाड़ फेका और जनता-जनार्दन को स्वतंत्र कर दिया। यहाँ तक कि कालाबाजारी, अपहर्ता, माफिया, नेता, कर्मचारी, अफ़सर सब स्वतंत्र हो गए और जब सब स्वतत्र हो गए तो देश की लूट-खसोट के सह-उद्देश्य मे एक-दूसरे के मौसेरे भाई भी बन गए।

फिर हरित क्राति आई, जिसने न केवल देश-भर की फाइलों से भुखमरी को समाप्त कर दिया वरन् व्यापारियों और एफ.सी.आई. के गोदामो में इतना अनाज़ भर दिया कि उन्हे पूरी छूट मिल गई कि चाहे जितना बेचो, खाओ या सड़ाओ। उनकी चाँदी के साथ घुनों, चूहों, छछूदरो की भी चॉदी हो गई।

तीसरी क्राति 'ग़रीबी हटाओ' की आई, जिसने गाँव-गाँव में बैंकें खोलकर और दलितों-निर्धनों के लिए नई-नई योजनाएँ चलाकर ग्रामीण गरीबों को सूदखोरो से मुक्त होने का अवसर उपलब्ध कराया अथवा कम-से-कम उसका स्वप्न दिखाया। इसके साथ-साथ ग्रामीण चालाकों को बैंक व राजस्व विभाग के कर्मियो से मिली-भगत कर फ़र्जी योजनाओं के आधार पर ग़रीबों को ऋण स्वीकृत कराकर अनुदान की रक़म की बंदर-बॉट करने के प्रचुर अवसर प्रदान किए, जिसके परिणामस्वरूप गरीबों को सरकार का ऋणी बनकर अपना घर-द्वार अथवा खेती नीलाम करा देने के भी प्रचुर अवसर प्राप्त हुए।

चौथी 'शैक्षिक क्रांति' आई, जिसके अतर्गत गाँव-गॉव मे प्राथमिक पाठशालाएँ खुल गई, जिनके अध्यापक सफेद कुर्ता-धोती पहनकर बच्चो को पढ़ाने के बजाय अन्य सफ़ेदपोश लोगो के गुणों में निपुण हो गए। हॉ इतना अवश्य मानना पड़ेगा कि नालायक-से-नालायक बच्चे को प्रत्येक कक्षा मे पास कर देने के मामले मे इन्होंने कभी तगदिली नहीं दिखाई। इसी दौरान कस्बो और नगरों में अनगिनत हाईस्कूल और इंटर कालेज भी स्थापित हुए, जिनमें अधिकतर ने छात्रों को पढ़ाने का खटराग करने के बजाय उन्हें परीक्षा में ठेके पर नक़ल कराने का सुगम्य, छात्र-प्रिय एव लाभप्रद धंधा अपनाया। इसी क्राति के दौरान विश्वविद्यालयों मे कम-से-कम पढाकर अधिक-से-अधिक डिग्रियॉ उत्पादित करने की होड़ लग गई। एसे हरे-भरे खेतो को देखकर नेताजी भी ललचाने लगे और उन्होंने अपन भाषणों में छात्रों को सन्मार्ग पर चलने-हेतु इस प्रकार प्रेरित किया, 'तुम्हें किताबें पढने की क्या जरूरत है, मेरा चुनाव लड़ाकर मुझे कुर्सी दिलाओ। फिर डिग्री और नौकरी तो हम तुम्हें यूँही दिलवा देगे।' और ऐसे नेताजी ने कुर्सी मिलने पर नकल की ठेकेदारी अपने रिश्तेदारों और चमचों को दिलाकर छात्रों को ख़ूब पास कराया और फिर उनसे अपना हक वसूल कर उन्हे नौकरी भी दिलवाई। इसप्रकार देश में न केवल शैक्षिक क्राति आई, वरन नौकरियों की ब्रिक्री में भी काति आई।

'उसके बाद आई सूचना क्रांति' गॉव-गॉव टेलीफोन और टलीविजन लग गए। इसने तो जैसे हमें 20वी सदी से 21वी सदी में एकदम ढकेल दिया। रमपुरा में बैठकर न्यूयार्क, लंदन जहाँ चाहो बात करो और जहाँ का चाहो प्रोग्राम देखो। डिस्कवरी चैनल पर दुनिया-भर की ख़बर प्राप्त करो। साथ-ही-साथ युवक-युवतियो के नंगे बदन देखकर ऑखे सेको या अपने बच्चो को मुफ़्त प्रशिक्षण दिलाओ कि मॉ-बाप और दादी-दादा की कैसे अवहेलना की जाती है और उन्हें कैसे अपमानित और तिरस्कृत किया जाता है।

औद्योगिक क्राति' ने भारत को संसार के 10 अग्रणी औद्योगिक देशो की पंक्ति में ला खडा किया। नए-नए उद्योग खुलते गए, जो बाद मे वैश्वीकरण के अतर्गत विदेशी कंपनियों द्वारा विलीन कर लिए गए।

इसे लाने-हेतु देश के तमाम काला धन संगृहीत करनेवालों को अपना धन श्वेत करन के उपाय सुझाए गए और अवसर उपलब्ध कराए गए और तर्क दिया गया कि तभी तो अप्रचलित धन का उद्योगो हेतु उपयाग सभव है। इससे देश के समझदार लोगों को भविष्य मे और काला धन एकत्रित करन की 'सुप्रेरणा' मिली, जिससे वे देश के अर्थशास्त्रियों को भविष्य मे भी काले धन को श्वेत करने की योजनाओ पर विचार कर लागू कराने का सुअवसर उपलब्ध करा सके।

बीसवी सदी के अवसान के अवसर पर भी दश मे एक महान क्राति आई। वह है 'श्वेत-क्राति'। यह क्राति अन्य क्रातियो की अपेक्षा अनूठी थी। इसमे 'हींग लगे न फिटकरी और रंग चोखा' वाली कहावत चरितार्थ होती थी। देश की गायों-भैसा की मख्या लगातार कम हो रही थी। उनके चरागाह ममाप्तप्राय हा रहे थ और उनकी नस्ल-सुधार के उपाय भी विशेष प्रभावी नही थ परतु उत्तर भारत में दूध की नदियाँ बहने लगी थीं। दूधिए अब केवल सुबह-शाम ही दूध नहीं देते थे वरन उनके अनुसार दोपहर, दोपहर बाद, अर्धरात्रि जब चाहो तभी उनकी गाएं दुही जा सकती थी। मबको गाढा दूध प्रचुर मात्रा मे उपलब्ध हो रहा था कि पता नहीं किस काने की नज़र लग गई कि पुलिस, प्रशासन को दूध की जॉच कराने की सूझी। जॉच के परिणाम ने देश के दूधियों को विश्व के श्रेष्ठतर अनुसंधानकर्ताओं की श्रेणी में लाकर खड़ा कर दिया। पता चला है कि इस देश के दूधियो को दुग्धोत्पादन-हेतु गायो, भैंसो, बकरियो अथवा गदहियों की आवश्यकता नहीं पडती है। बम यूरिया, साबुन और ग्लूकोज़ मात्र की उपलब्धता से वे देश मे श्वेत-क्राति लाए हुए हैं। कुछ डाक्टरों, जिन्हें शायद कोई दूधिया पानी मिला दूध पिलाता रहा होगा, फतवा दे दिया कि ये दूधिए कैंसर का व्यापार कर रहे हैं और इन्हें पकडा जाए और कुछ सिरफिरे पुलिसवालो ने धर-पकड भी शुरू कर दी। बस फिर क्या था, देश के महान कर्णधार यह कैसे सह सकते थे? और उन्होंने अपने नेतृत्व में इन दूधियों का संगठन बनाकर एलान कर दिया कि तुम बिल्कुल परवाह न करो। उच्च वर्ग के लोगो में, जो ही प्राय: दूध पीते है, कैंसर फैलाना तुम्हारा जन्मसिद्ध कर्त्तव्य है। मुझे कुर्सी मिलन

दो मैं तुम पर कोई कानूनी कार्यवाही नही होने दूगा और क़ानून लागू करनेवालों को नौकरी से निकाल दूँगा। हमारे नेतृत्व मे संगठन बनाओ और तब तक हड़ताल पर रहो, जब तक दूध मे यूरिया मिलाने की तुम्हारी माँग मान न ली जावे।

पाठको, आप आश्वस्त रहें। जब बीसवी सदी का अत इतना क्रातिपूर्ण और स्वास्थ्यवर्धक है तो हमारे देश के कर्णधारों की कृपा से इक्कीसवीं सदी का आरंभ कम क्रांतिपूर्ण नहीं होगा।

❑

डाकिनी

जितने मुँह उतनी बात।

कोई मुस्कराते हुए कहता है, 'अपने मुँह मियाँ मिट्ठू बना करते थे। 'आज देखी बहादुरी।'

कोई अशिष्ट नवजवान कहता, 'सुना है बीबी सबेरे-सबेरे धोती साफ कर रही थी। गंदी जो हो गई थी।'

कोई कान पकड़ता, 'अरे ज्यादा न बोलो। हो सकता है किसी डाकिनी ने छछूंदर का रूप धर लिया हो और तुम्हें खा जाए।'

गाँव-भर के घर-घर मे आज बमबहादुर सिह के यहाँ घटित घटना की चर्चा हो रही थी। खूब चटखारे ले लेकर। घटना भी क्या, बस छोटी-सी बात थी। सबेरा होने पर जब बमबहादुर सिंह की घरवाली ने कमरे का दरवाज़ा खोला, तो उसके नीचे चिपकी एक मरी हुई छछूंदर मिली।

मरा हुआ चूहा मिला होता, तब तो चर्चा होना स्वाभाविक था, क्योंकि हो सकता है कि चूहा प्लेग के कीड़ों से मरा हो और उसकी मौत गाँव मे प्लेग फैलने का संदेश हो। पर यह तो छछूंदर थी, फिर इतना हगामा क्यो?

हंगामा इसलिए हो रहा था कि यह घटना बमबहादुर सिंह के घर घटित हुई थी किसी ऐरे-गै़रे-नत्थू-खैरे के घर नहीं। गाँव में और गाँव के बाहर भी जो लोग रिटायर्ड लांस नायक बमबहादुर को जानते है, उनकी बहादुरी का लोहा मानते रहे हैं। किसे नही मालूम कि 1971 की बाँग्ला

दश की लड़ाई म उन्होने पाकिस्तानी फाजियो को दर्जनो स्थानो पर धूल चटाई थी और उन्हे वीरचक्र से अलकृत भी किया गया था। गाँव का बच्चा-बच्चा उनके मुँह स उनकी बहादुरी का कोई-न-कोई किस्सा दस-पाँच बार सुन चुका है। स्त्रियो तक को ज्ञात है कि एक दिन जब वह एक टुकडी के साथ घोर अधकार की रात्रि में पूर्वी बंगाल के जगल म पाकिस्तानी फौजो के उस अड्डे का पता लगाने निकले थे, जहाँ पाकिस्तानियो न अपने शस्त्रास्त्र का डिपो बना रखा था, तभी पाकिस्तानी फौजों ने उन्हें घेर लिया था और उनके अन्य साथी मारे गए थे, परतु वह अँधेरे का फायदा उठाकर जंगल मे छिप गए थे। फिर उन्होने छिपकर भागने के बजाय अकेले ही चुपचाप एम्यूनीशन डिपो पर हैड ग्रेनेड स हमला बोल दिया था, जिसमे उनके तमाम बम व ग्रेनेड दग गए थे और उस हडबडी का लाभ उठाकर वह सुरक्षित वापस आ गए थे। उनकी इस बहादुरी और सूझ-बूझ की भूरि-भूरि प्रशसा हुई थी।

कल जाड़ा की अँधेरी रात में मकान के सभी दरवाज़े अच्छी तरह बद कर बमबहादुर सिह एक कमरे में अपनी पत्नी के साथ गहरी नीद सोए हुए थे कि अचानक उनके कमरे के दरवाज़े पर खड़खड़-खडखड की आवाज़ होन लगी। बमबहादुर सिंह की कच्ची नींद टूट गई। अपनी सूझ-बूझ के अनुसार बिना आँख खाले वह चुपचाप पलंग पर पडे रहे और दरवाज़े पर होनेवाली खड़खड़-खड़खड़ सुनते रहे, क्योंकि उन्होने सुन रखा था कि कच्छा-बनियान गिरोह के चोर जब चोरी करने घर म घुसते हैं तो उस समय तुरंत सिर पर वार करते हैं, जब कोई घरवाला जागकर उठने को होता है। जब काफ़ी देर तक कोई हमला नही हुआ लेकिन दरवाजे पर खडखड होती रही, तो बमबहादुर सिह ने आँखे खोली पर कमरे मे कोई नजर नहीं आया। वह समझे कि डकैत दरवाजा तोडकर घर में घुसने की कोशिश म है और उन्होंने झट से अपनी बदूक म कारतूस भरकर कुडा चढा लिया। फिर दरवाज़े की तरफ़ बदूक तानकर साहस जुटाकर धीरे से बोले, 'कौन?' परंतु उधर से कोई उत्तर नहीं मिला, पर खड़खड भी बंद नही हुई। 'दो-एक बार फिर कौन' कहने पर भी कोई उत्तर नहीं मिला, पर खडखड भी बंद नहीं हुई, तब उन पर एक

अजब-सा ख़ौफ़ छाने लगा। उन्होंने एक बार फिर धीरे से कहा, 'कौन है?' पर फिर कोई जवाब नहीं मिला। बस खडखड़ की आवाज़ कुछ तेज हो गई। कहते हैं कि अनजान का डर किसी जाने शत्रु के डर से कही अधिक डरावना होता है। उन्हें अचानक याद आया कि उनकी दादी ने उन्हे बचपन में गाँव के परसादी क घर का किस्सा सुनाते हुए बताया था, 'गॉव के किनारे बने श्मशान-स्थल पर जब तक लाशे पहुँचती रहती है तब तक तो वहाँ बसनेवाली डाकिनी की भूख मिटती रहती है। लेकिन जब बहुत दिनों तक लाशें नहीं पहुँचती है तो डाकिनी अपनी भूख मिटाने को किसी के घर मे घुसने की कोशिश करती है। वह बद दरवाज़े को खटखटाती है और खोलते ही झपट्टा मारकर खा जाती है। परसादी के घर भी एक रात उसने दरवज़ा खटखटाया था और उसके अधनींदे बेटे ने जैसे ही दरवाज़ा खोला था, वह उसे उठाकर भाग गई थी। बेटे की लाश तक नहीं मिली थी।

बमबहादुर सिंह ने फौज में अलौकिक शक्तियों से लड़ने की ट्रेनिंग तो पाई नहीं थी, जो सेफ़ पोजीशन लेकर उसे तड़ातड गोलियो से भून देते। फिर डाकिनी का क्या? कब कौन-सा रूप धर ले या अतर्धान हो जाए? उनके दिलोदिमाग़ पर डाकिनी हावी होने लगी और उन्हें ध्यान आया कि बहुत दिनो से उनके गाँव में कोई मौत नहीं हुई है, इसलिए आज भूखी डाकिनी ही उनके घर का दरवाज़ा खटखटा रही है। उन्होने धीरे से अपनी पत्नी को पुकारा, जो अभी भी गहरी नींद में सो रही थी। हडबड़ाकर जागती हुई वह पति द्वारा 'डाकिनी-डाकिनी' पुकारे जाने पर समझी कि इन्हें कोई दौरा पड़ गया है। उसने घबराकर कहा, 'क्या हो गया है तुम्हें।' उसकी जोरदार आवाज़ पर दरवाज़े पर खड़खड़ कुछ देर को रुक गई, लेकिन बमबहादुर सिंह द्वारा पत्नी को इशारे से चुप कराकर धीरे से यह कहने पर कि दरवाज़े पर डाकिनी है, खड़खड़ाहट फिर आरंभ हो गई। पत्नी ने जब खडखडाहट सुनी तो साहस कर कहा, 'मै देखती हूँ कि कैसी है 'डाकिनी', पर बमबहादुर सिंह ने उसे पकडकर पिछले दरवाज़े की ओर खींचा। फिर दरवाज़ा खोलकर गली मे ज़ोर-जोर से चिल्लाने लगे, 'डाकिनी! डाकिनी'। उनका शोर सुनते ही मुहल्लेवाले

लाठी, बल्लम, फरसा लेकर दौड आए। जब बमबहादुर सिंह ने कहा कि उनके कमरे के सामने के दरवाज़े को डाकिनी खड़खडा रही है तो किसी की हिम्मत कमरे मे घुसने की न हुई। उनके पड़ोसी नेतराम दौड़कर ओझा को बुला लाए। उसने भी कमरे के पिछले दरवाज़े से खडखड़ाहट की आवाज़ आती सुनी। उसका सामना कभी असली डाकिनी से नहीं हुआ था। बस किसी-किसी स्त्री पर चढी हुई डाकनी को ही उसने उतारा था। इसलिए वह भी आगे बढ़कर दरवाज़ा खोलने का साहस न जुटा पाया। फिर भी अपनी साख बचाने के लिए उसने ओझाई शुरू कर दी। ओझाई का जितना अधिक धुँआ उस कमरे मे घुसता, दरवाजे की खड़खड़ाहट उतनी ही बढ़ती जाती। अब गाँववाले और परेशान कि यह तो बडी निडर और बलवती डाकिनी है। बमबहादुर सिंह की सिट्टी-पिट्टी गुम हो रही थी, क्योंकि वह सोच रहे थे कि अगर आज वह बच भी गए तो डाकिनी का क्या, कही भी कभी भी हमला कर सकती है। पर धीरे-धीरे दरवाजे की खड़खड़ाहट शांत हो गई और उषाकाल का उजाला छिटकने लगा। बमबहादुर सिंह की पत्नी जो शुरू से ज़िद कर रही थी कि उसे दरवाज़ा खोलने दिया जाए, फिर नहीं रुकी। उसने आगे बढ़कर दरवाज़ा खोला तो दरवाज़ो के नीचे एक मरी छछूंदर को फँसा हुआ पाया। बेचारी दोनो दरवाज़े के बीच की साँस में फँस गई थी और रात-भर निकलने का प्रयत्न करते-करते दम तोड़ चुकी थी।

गाँव के शैतान बच्चे अब पीठ पीछे बमबहादुर सिंह को छछूंदर सिंह पुकारने लगे हैं।

❑

नाचीज़ रकीब

छुन्नन मियाँ मेरे पड़ोसी भी हैं और लॅगोटिया यार भी। मुझे नही मालूम कि गहरे दोस्तो को लॅगोटिया यार क्यों कहते हैं, क्योंकि ज़रूरी नही गहरे दोस्त लंगोट पहनतें हो। हम दोनो में से भी कोई लंगोट नही पहिनता है और न लगोट का कच्चा है। छुन्नन मियॉ तो बड़े हाजी-नमाजी किस्म के आदमी हैं, शरियत की हर हिदायत को खुदा का हुक्म मानते है। इन्सानी रिश्तों मे भी बड़े पुरखुलूस व मुहब्बती किस्म के हैं। अब बीवी के मसले को ही ले तो सुल्ताना भाभी के लिए उनकी मुहब्बत और वफादारी की पूरे मुहल्ल में मिसाल दी जाती है। एक बार जब दोनो मे सख्त अनबन हो गई थी और सुलताना भाभी नाराज़ होकर यह कहकर मायके चली गई थी कि अब मेरा मरा मुँह देखना, तो कितने गुमसुम रहने लगे थे और अल्लाह कसम जो उन्होंने घर के आस-पास उम्मीदवारी मे चक्कर लगाती किसी हसीना की तरफ़ निगाह भी उठाई हो। जब काफी वक्त गुजर गया था और भाभीजान नहीं लौटी थी, तो एक दिन उनके मामूजान उन्हें समझाने आए थे कि बेटा तुम्हे क्या कमी है? अल्लाह का दिया इतना है कि चार-चार बीवियॉ पाल सकते हो। फिर क्यों उस बेवफा के लिए अपनी जवानी गारत करते हो। छुन्नन भाई मामूजान का लिहाज कर पहले तो सब चुपचाप सुनते रहे थे लेकिन जब मामूजान इशारो-इशारों मे जवानी की दहलीज पर क़दम रखती अपनी हसीन दुख्तर का ज़िक्र ले आए तो छुन्नन चुप न रह सके, और कुछ ऐसा कह गए थे कि मामूजान तब के गए आज तक वापस नहीं आए हैं। अलबत्ता

उड़ती-उडती यह ख़बर सुल्ताना भाभी को मिल गयी थी और वह एक दिन सौ फीसदी ज़िंदा (खुदा उनकी उमर को नज़र न लगे) छुन्नन भाई के दौलतखाने मे मुस्कराती हुई तशरीफ ले आई थी।

सुल्ताना भाभी के लिए छुन्नन भाई की बेपनाह मुहब्बत की एक वजह भाभी का बेदाग़ हुस्न भी है। पैंतीस की उमर पार करने और जवाँ होते दो बच्चों के बावजूद सुल्ताना भाभी अभी भी एसी लगती है कि पैगाम भेजने को दिल करे। उनका हुस्न छुन्नन भाई के लिए रकाबत का भी बायस रहा है। पर भाभी बड़ी नेकदिल है और मुझे तो हमेशा सगे देवर जैसा मानती रही है। कोई भी मौसम या वक्त रहा हो, छुन्नन भाई व भाभी ने मेरा फ़राखदिली से इस्तकबाल किया है और हमारी बातचीत में कभी कोई दुराव-छिपाव नही रहा है।

अब कल की ही बात ले लीजिए। शाम को मैं अपने घर पर बोर हो रहा था तो छुन्नन भाई के घर चला गया। देखता क्या हूँ कि छुन्नन भाई अंडरवियर-बनियाइन पहने कमरे की हवा मे कुछ ढूँढते से नजर आ रहे थे और जहाँ कोई मच्छर नजर आ जाता, उस पर भूखे शेर-से झपट पड़ते। बीसियों मच्छरों की बेजान लाशें फर्श पर दफनाए जाने का इतजार कर रही थी और दसियो मच्छर हाथ-पैर तुड़ाए तड़प रहे थे। मेरे कमरे मे आने से छुन्नन भाई की जेहाद के जोश मे कोई कमी नही आई बल्कि मुझे लगा कि उनके जुनूँ में इजाफ़ा ही हो गया है। मै इस मंजर को देखकर भौचक्का हो रहा था और कुछ कहने ही जा रहा था कि तब तक चौके से आती हुई भाभी नजर आ गई। मैंने पूछा, 'भाभी, भाईजान को यह क्या हो गया है?'

भाभी खिलखिलाकर हँस पड़ीं और बोली, 'क्या बताऊँ भैया, तुम जानते ही हो कि अप्रैल के इस महीने मे मच्छरों का कितना ज़ोर है। किसी तरह न तो कम होते है और न काबू मे आते हैं। कछुआछाप के धुएँ के ऊपर मँडरा-मँडराकर नाचते है और गुडनाइट की खुशबू को इतर-गुलाब मानते है। मच्छरदानी लगाओ तो हनुमान जी की तरह सूक्ष्म रूप धर लेते हैं और अंदर नमूदार हो जाते हैं। अगर बहुत छोटे छेदों की मच्छरदानी ले आओ और उनमे टाँग फसने का डर हो तो मजनू जैसी

दीवानगी के साथ मच्छरदानी के बाहर घात लगाए बैठे रहते हैं और बत्ती गुल करने के लिए या गुसलखाने जाने के लिए जरा भी मच्छरदानी खोली कि बरखुरदार अंदर हाज़िर। फिर सोना हराम कर देते है। ठीक कान के ऊपर ब्रेक-डान्स करते हुए पाप म्यूजिक बजाएँगे और जरा भी हाथ-पाँव या मुँह खुला रह गया तो ऐसा ज़बरदस्त नश्तर लगाएँगे कि सवेरे तक खुजलाते रहिए। मारने को सोचिए भर कि आपके जहन की बात समझकर चारपाई के किसी कोने मे जाकर छिप जाएँगे। आपके भाईजान इन हरकतो को तो किसी तरह बरदाश्त करते रहे है पर कल रात तो हद ही पार हो गई। एक मुश्टडा-सा मच्छर इनका लहू पीकर मस्त होकर मच्छरदानी की छत पर ऊँघ रहा था। इन्होंने गुस्से में दोनो हाथ उठाकर मारने की कोशिश की, पर वह मुँहझौसा कहाँ इनकी गिरफ़्त मे आने वाला था। इन्हें चकमा देकर उडा तो ये समझ ही न पाए कि कहाँ जमीदोज हो गया है। ये उसे ढूँढने के लिए चारपाई पर बैठे-बैठे ही भारतनाट्यम कर रहे थे कि इन्होंने देखा कि वह मेरे गेसुओं के ऊपर मँडरा रहा है। ये फिर जैसे ही उसे हलाल करने को दौडे तो उसने मेरी जुल्फों मे न जाने कहाँ पनाह ले ली कि इनके लाख ढूँढने पर भी फिर नजर न आया। आपके भाईजान का पारा उस नाचीज़ रकीब की इस हरकत पर इस क़दर गरम हो गया है कि तभी से मच्छरों के कत्लेआम मे मुब्तिला हैं।'

❑

कलियुग की कौतुक कथा

शास्त्रों के अनुसार कलियुग की आयु 4 लाख 32 हज़ार वर्ष निर्धारित है। कलियुग का आरंभ महाभारत के उपरांत हुआ था, और अब तक कलियुग के 25 हज़ार वर्ष बीत चुके है। विगत जन्माष्टमी को कृष्ण जी का 25 हज़ारवॉ जन्मदिन था अर्थात् सहस्रवॉ रजत-जयंती दिवस। द्वापर के अवसान पर अपनी इहलीला समाप्त करन क बाद कृष्ण जी न भारतवासियो की खोज-खबर लेना बंद कर दिया था और उन्हे अब न तो द्रौपदी के चीर की चिता सताती थी, न भूखी गायो की और न ब्रजबासिन गोपियो के अनवरत शाषण की। अपने अदम्य स्वभाव के अनुसार नारदमुनि अवश्य कभी-कभी पृथ्वी का चक्कर लगा जाते थे और कृष्ण जी को यहॉ के नवीन समाचारों एव रीति-रिवाजो के बारे मे बता दिया करते थे। उन्ही ने कृष्ण जी के कान भर दिए थे कि भारत मे रजत-जयंतियाँ धूमधाम से मनाने का नया शौक लोगो में पैदा हो गया है। कुछ दिन पहले उन्होंने कृष्ण जी को यह भी याद दिला दिया था कि इस बार उनकी सहस्रवीं रजत-जयंती पड रही है और मथुरावासियों की इसे बड़े धूमधाम से मनाने की योजना है। यह सुनकर कृष्ण जी का कौतुकी मन कुलबुलाने लगा और उन्होंने सोचा, इस बार कलियुग की कृष्णजन्माष्टमी के उत्सव का आनंद लिया जाए।

यह सोचकर कि जन्म का समय तो अर्धरात्रि का है, तो क्यो न पहले से पहुँचकर वर्तमान मथुरा को भी देख लिया जावे, हो सकता है कि वहॉ आधुनिक गोपियो के साथ रास-रंग का आनंद भी प्राप्त हो जाए।

कृष्ण जी सायंकाल होते ही अपने रेशमी स्वर्णाभूषण एव मोर-मुकुट धारण कर तथा हाथों में बाँसुरी लेकर मथुरा की एक चलताऊ सडक पर प्रकट हो गए और मंद-मद मुस्कान के साथ आधुनिक मथुरा को साश्चर्य देखने लगे। उन्हें आशा थी कि मथुरावासी उन्हे पहचानकर आह्लादित हृदय से उनका स्वागत करने को दौड़ पड़ेंगे। पर हुआ यह कि उन्हे देखकर उनके चारों ओर लोग इकट्ठे तो होने लगे, पर उनके चेहरे पर किसी प्रकार का स्वागत-भाव आने के बजाय मसखरी का भाव दिखाई देता। उनमें खुसर-फुसर होती कि जन्माष्टमी पर अच्छा बहरुपिया बना है और फिर कुछ लोग कृष्ण जी के सामने अठन्नी-रुपैया डालकर आगे बढ जाते। भीड़ में एक-से-एक सुदर गोपियाँ भी थीं। उनमे कुछ तो जीन्स-ब्लाउज पहने हुए इतनी गोरी थी, जितनी कृष्ण जी ने मथुरा वृंदावन में कभी देखी भी नहीं थी। पर गोपियाँ भी कृष्ण जी की ओर ऐसे देखती जैसे लोग विदूषक को देखते है और कुछ देर बाद कुछ रुपए-पैसे उनके सामने फेंककर आगे बढ जातीं।

भीड़ के कारण सड़क पर ट्राफिक-जाम हो रहा था और ट्रक पर बैठे सरदार जी बार-बार हार्न बजाने के साथ-साथ चुनी हुई पंजाबी फुलझड़ियाँ भी मुँह से निकाल रहे थे। ट्रैफिक-पुलिस का एक सिपाही सीटी बजाता हुआ आया और भीड को चीरता हुआ कृष्ण जी के पास आकर बड़बड़ाने लगा, 'चल हट बे बहरुपिए। क्या अंधा है, जो दिखाई नहीं देता है कि सारा ट्राफिक रुक गया है? माँगना है तो किनारे खडे होकर माँग।'

कृष्ण जी की समझ में आ गया कि अब तो मथुरा में आजकल की वेषभूषा में अपने को छिपाते हुए ही प्रकट होने मे ख़ैरियत है। अतः वह वहाँ से एक अँधेरी गली मे एकात की तलाश में खिसक लिए।

अपने 'प्रारंभिक स्वागत' से वह इतना घबरा गए थे कि उन्होने सोचा कि अब जन्म के समय तो चुपचाप अपनी पहचान छिपाते हुए किसी निर्जन प्रवेश-मार्ग से महल मे घुस जाएँगे और फिर भक्तों के बीच खड़े होकर उन्ही में अपने को छिपाकर जन्मोत्सव का अवलोकन करेगे। अपने मुकुट एवं स्वर्णाभूषण को गिरवी रखकर उन्होने एक धोती-कुर्ते

का जोड़ा ख़रीदा और उसे धारण कर अर्धरात्रि के निकट महल की ओर चल दिए। पर यह क्या, यहाँ तो पूरे महल के चारों ओर बैरीकेड लगाया हुआ था और स्थान-स्थान पर रायफलों से लैस पी.ए.सी. के सिपाही भी लग हुए थे। बैरीकेटिंग के चारो ओर चक्कर लगाने पर उनकी समझ मे आया कि सबसे निर्जन मार्ग मस्जिद की तरफ से है और वहाँ पर ड्यूटी का सिपाही भी ऊँघ रहा है। सभवत: महीनों से बिछडी पत्नी की याद मे स्वप्निल अवस्था में था। इसलिए वह वहाँ चुपचाप बैरीकेड पर चढकर अंदर कूद गए, पर दुर्भाग्य कि कूदने की धमक से सिपाही की नींद टूट गई और उसके मुँह से यकायक निकला, 'थम, कौन आता है, दोस्त या दुश्मन?' और उसने रायफल तान ली। कृष्ण जी ने सोचा कि अब अपना वास्तविक परिचय बता देने में ही भलाई है, नहीं तो पता नही वह कब रायफल की लिबलिवी दबा दे, अत: वह बोल पड़े, 'मै हूँ तुम्हारा चिरसखा कृष्ण कन्हैया, जिसको तुम रोज लेते हो बलैंया।'

ऐसी अटपटी बात सुनकर सिपाही अत्यंत-सशकित हो गया और उसने ख़तरे का अलार्म बजा दिया। बस फिर क्या था तमाम पुलिसवाले दौड़े आए और मैडल पाने की लालसा में उनमें होड़ लग गई कि इस विध्वंसक को मै सबसे पहले पकड़ लूँ। उन्होने कृष्ण जी को पकडकर हथकडी पहना दी। कृष्ण जी ने अपने विषय मे बताने और समझाने का प्रयत्न किया, परंतु प्रथमत: उनके द्वारा दिए जानेवाला परिचय अविश्वसनीय था और फिर उन्हें छोड़ देने पर मैडल व पुरस्कार बेकार मे मारे जाते। इसलिए अर्धरात्रि से पाँच-सात मिनट पहले कृष्ण जी अपनी जन्म-जेल मे बंद कर दिए गए। वहाँ एक पालना लटक रहा था, जो एक रेशमी शाल से ढका हुआ था। रात्रि के 12 बजते ही पुजारी ने वह शाल उठाया और सर्वत्र घंटे-घड़ियाल बज उठे। उसमे रखी कृष्ण की बालमूर्ति के दर्शन-पूजन को समस्त स्त्री-पुरुष व बच्चे व्याकुल होते रहे और बेचारे कृष्ण जी हाथ में हथकड़ी पहने पीछे से यह तमाशा देखते रहे। मूर्ति की पूजा-अर्चना समाप्त होने के बाद जब दर्शनार्थी चले गए और पुजारियो ने चढ़ावा हथियाकर जन्म-जेल का दरवाज़ा बंदकर ताला लगा दिया, तो हारे-थके कृष्ण सीलन-भरे जेल के ठडे फ़र्श पर लेट गए। क्लांत तन

और क्लात मन को निद्रादेवी ने अपनी शरण मे ले लिया।

सबेरे नीद देर से खुली और नित्यक्रिया से निवृत होकर उन्हें जैसे ही इस स्थिति पर विचार करने की फुर्सत मिली कि आगे पता नहीं क्या-क्या भुगतना है, वैसे ही एक पुलिसवाले ने पुजारी के साथ आकर उन्हे जेल से निकाला और कैदी-वाहन मे बैठने का आदेश दिया। रास्ते म उसमे बैठे एक खूँखार मे मुच्छड कैदी ने उनसे पूछा, 'कहाँ से आया है?'

कृष्ण जी ने सीधा-सा उत्तर दिया, 'ब्रह्मलोक स।' वह मुच्छड़ क्रोध से लाल होकर कृष्ण जी को उनके इस उत्तर के लिए मजा चखाने को तैयार हो ही रहा था कि पुलिसवालों ने पिछला दरवाज़ा खोलकर सबको उतरने को कहा। कृष्ण जी एक रोबदार मजिस्ट्रेट के सामने पेश किए गए। उसने पूछा, 'तोड़फोड़ करने आया था? कौन है तू, रामभक्त या कृष्णभक्त?'

कृष्ण जी ने सगर्व उत्तर दिया, 'मैं क्यों विध्वंस करूँ और क्यो बनूँ रामभक्त या कृष्णभक्त? समस्त ब्रह्मांड ही है मुझ पर आसक्त।'

मजिस्ट्रेट क्रोधित होकर बोला, 'सीधे बोल, जानता नही ला आफ कटेम्प्ट? वह भी लगा दूँगा। अपनी सफ़ाई मे कोई गवाही पेश करना है?' कृष्ण जी ने निगाह उठाकर पहले कचहरी परिसर को देखा और फिर दिव्यदृष्टि से दूर-दूर तक देखा कि कही कोई नंद, कोई यशोदा, कोई सखा अथवा कोई गोपिका नजर आ जाए, जो मजिस्ट्रेट को उनकी पहचान करा दे कि वही परमब्रह्म कृष्ण है परंतु उन्हे चारों ओर बस कंस के वंशज नज़र आए।

सफाई की गवाही के अभाव मे मजिस्ट्रेट ने कृष्ण जी को टाडा के अंतर्गत दंडित कर मथुरा जिला जेल भेज दिया। पता चला है कि निकट भविष्य मे उनकी रिहाई की कोई संभावना नही है। मानवाधिकारवादियों से मेरी अपील है कि एक केस भगवान की स्वतंत्रता के अधिकार-हेतु भी निःशुल्क लड़ लें।

❑

अँग्रेज-भौजी

भौजी का नाम सुनत वैसे ही देवरों के मुँह मे लड्डू फूटने लगते हैं और अगर भोजी अँग्रेज़ हा, तब तो सोने में सुहागा। हिंदुस्तान में एसे भाग्यशाली देवर कम ही हांगे, जिन्हं अँग्रेज़ भौजी को पाने और अपने भाग्य पर इतराने का मौका मिला हो। मैं उन्ही चंद गिने-चुने दवरों में से एक हूँ।

हुआ यूँ कि जब मैं बी.ए. में पढ रहा था तो बडे भैया इजीनियरिग का कोर्स पास कर लदन चले गए थे, इंपीरियल कालेज आफ इजीनियरिग में आगे की पढ़ाई करने। मैंने भी माँ व पिता के साथ उन्हे एयरपोर्ट पर माला पहनाकर विदा किया था। सबकी आँखें नम हो गई थीं और माता ता कई दिन नक रोती रही थी। भैया हम सबको बड़ा प्यार करते थे और पहुँचते ही उन्होंने ख़तो की ऐसी झडी लगा दी थी कि उन सबका जवाब देना भी महँगा पडने लगा था। आखिर मुआ एयरोग्राम तक साढ़ छः रुपए का पडता था और लिफ़ाफ़ा भेजो तो पूरे ग्यारह रुपए साफ हो जाते थे। भैया के हर ख़त में नई-नई जगहों का वर्णन होता था। कभी हाइड पार्क की सर्पेंटाइन और स्पीकर्स कार्नर का, कभी वेस्टमिस्टर ऐबी का और कभी टेम्स नदी में टावर-ब्रिज के नीचे से निकलते जहाजों का। उन खतों को पढकर मेरा मन ख्वाबी दुनिया मे खो जाता और अक्सर सोचता कि लदन जब इतना ख़ूबसूरत है तो वहाँ की गोरी लड़कियाँ कैसी हसीन होंगी। भैया अपन खतों मे कभी किसी लड़की का जिक्र नहीं करते थे। आखिर उनका हरेक खत घर मे हम सभी की मिल्कियत होता था और

माता-पिता ऐसी बातें पढ़कर क्या सोचते। धीरे-धीरे भैया के खतों की रफ़्तार कम होने लगी और हम सब की साँस में साँस आई कि जवाबों का ख़र्चा हमारी कुव्वत की हदों में रहेगा। पर कुछ दिनों बाद खतों की तादाद इतनी कम हो गई जैसे लंदन से बैलगाड़ी से चलकर आते हों। और फिर तो पिता जी जब तीन-चार खतों में जवाब का इसरार करते, तभी एक जवाब आता और उसमें भी बस इस पर ज़ोर रहता कि क्या बताएं काम इतना बढ़ गया है कि वक्त ही नहीं मिलता। हम सब सोचते कि आखिर इंग्लैंड की पढ़ाई है, मेहनत तो पड़ती ही होगी। अलबत्ता माँ ज़रूर कभी-कभी भैया की याद करती-करती कह बैठतीं, ऐसी भी क्या पढ़ाई है कि चार अक्षर लिखने तक का वक़्त नहीं मिलता। उनके मन में एक अनजानी दहशत-सी बैठती जा रही थी।

और तभी एक दिन धमाका हो गया। भैया का पिता जी के नाम खत आया कि क्रिसमस की छुट्टियों में वह घर आ रहे हैं। साथ में उनकी बहू स्टेला भी होगी। भैया ने लिखा था कि स्टेला बड़ी अच्छी लड़की है और घर में सब लोगों को उसे देखकर बड़ी खुशी होगी। खत देखकर पिता जी जैसे सन्न रह गए। उन्होंने चुपचाप वह खत माँ को पकड़ा दिया और उसे पढ़कर माँ ने सर पीट लिया और घर सर पर उठा लिया कि पता नहीं किस जात की होगी, क्या वह चौके में भी घुसेगी, उसका बनाया खाना कैसे खाया जाएगा, आदि-आदि। बस मैं यह सब उछलकूद तमाशबीन की तरह देख रहा था, क्योंकि एक अँग्रेज़ लड़की के मेरी भौजी बनने की खुशी व घमंड से मैं फूला नहीं समा रहा था। मैं सोच रहा था कि कैसी होगी मेरी भौजी? बिलकुल गोरी मेम साहब-सी? क्या अँग्रेज भौजी भी देवर से हँसी-मज़ाक करती होगी? क्या इंग्लैंड में उनके घर जाकर, मैं भी वहीं कोई नौकरी ढूँढ़ पाऊँगा? यहाँ, तो आर्ट्स साइड वालों को कोई नौकरी मिलती नहीं है। और हो सकता है कि वहाँ भौजी की कोई छोटी बहन हो और मेरी भी टिप्पस भिड़ जाए।

फिर भैया के खत में लिखे वाले दिन एक टैक्सी हमारे घर के सामने आकर रुकी और उसमें से भैया और भौजी उतरे। भौजी का

दखकर हम सभी भौंचक्के रह गए। गोरे बदन पर रेशमी साड़ी, माथे पर विंदी, मॉग म सिंदूर। भौजी ने आगे बढ़कर भैया से पहले ही माँ व पिताजी के पैर छुए और उन्होंने गद्गद् होकर आशीर्वाद दिया। मैंन भौजी क पैर छुए तो उन्होने 'हाय' भर कहा। फिर अदर जाकर भौजी न सवस पहले मॉ के पूजा के कमरे में जाकर भगवान को माथा नवाया। मॉ गद्गद् हो गई और उनके शको-शुबह काफ़ूर हो गए। भौजी माँ की बात समझ तो नहीं पाती थीं पर अपनी क्लोज़-अप मुस्कराहट से उनका दिल जीत लती थी। एक हफ्ते तक भौजी घर पर रही। इस बीच मेरे पैर भी जमीन पर नही पडते थे। भौजी थाड़े दिन को आई थी, इसलिए माँ ने उन्हे चोका-बर्तन नहीं करने दिया, परतु मॉ जब सोने जाती, तो भौजी उनके पेर दबाना न भूलती। सोने स पहले मुझे भी गुड-नाइट अवश्य कहती। एक हफ़्ता एक सपने की तरह गुजर गया और भौजी जिस रफ़्तार से आई थी, उसी रफ़्तार से लौट गईं। हम सब उनकी तारीफ़ के पुल बाँधते अपने उसी पुराने मुहल्ले में रह गए। पड़ोस की रामकली चाची भी, जिनकी बहू का रंग साँवला था और जो सबकी बहुओं में अवगुन ही दखा करती थी मेरी भौजी के बारे मे यह कहे बिना न रह सकी, 'बहू है तो क्रिस्तान लकिन हैं सुलच्छिनी।'

भैया व भौजी के जाते समय माँ ने भौजी की नज़र उतारी। भैया ने लंदन पहुँचकर जो खत भेजा उसमें लिखा कि भाभी को घर पर बहुत अच्छा लगा और वह अपने देवर को तो अक्सर याद करती है। यह अगले साल गर्मियां में फिर इडिया चलने को कह रही है। पढकर मेरी बॉछे खिल गई। लेकिन कुछ दिनो बाद फिर भैया के खत आना कम होने लग आर धीरे-धीरे बिल्कुल बद हो गए। मॉ फिर दुखी रहने लगी और मैं अक्सर मन-ही-मन भौजी से शिकवा करने लगा कि ऐसी निष्ठुर हो गई कि वह भी कोई खत नहीं लिखती है। धीरे-धीरे गर्मी आ गई और इस बार भैया और भौजी तो नहीं आए, लेकिन लदन से पिताजी के दोस्त सिन्हा अंकल का लड़का जरूर अया। मैं भौजी के बारे मे जानने को उतावला हो रहा था और दूसरे दिन ही उससे मिलने चला गया। उसस भैया और भौजी के बारे म पूछने पर पहले तो वह टालता रहा, पर मेरे

जिद करने पर बताया, 'क्या बताऊँ? मैंने तो बहुत समझाया था लेकिन तुम्हारे भैया तो स्टेला के लिए औंधे मुँह गिर पडे। वह इम्पीरियल कालेज मे क्लीनर (महरी) का काम करती थी और उसके पहले स तीन-चार ब्वाय फ्रेंड थे, जो उससे केवल अपना मतलब गाँठते थे। स्टेला बातचीत मे बहुत स्वीट थी और पहले ही दिन जब उसने तुम्हारे भैया से 'हाय, गुड मार्निंग' कहा, तो वह उस पर लट्टू हो गए। स्टेला इस खेल की मजी खिलाड़ी थी और भैया का सुनहला भविष्य देखकर उन्हे अपने जाल मे फँसाती गई। जल्दबाजी में तुम्हारे भैया ने उससे शादी कर ली और उसे हिंदुस्तानी रीति-रिवाज सिखाने लगे, जिन्हे उसने नाटक के कलाकार की तरह तुरत सीख लिया और वह हिंदू पत्नी दिखने लगी। तभी तुम्हारे भाई उसे यहाँ ले आए थे।

यहाँ स लौटने के बाद स्टेला ने धीरे-धीरे अपना रंग दिखाना शुरू कर दिया। अपने पुराने चहेतों में ज्यादा वक्त बिताने लगी और तुम्हारे भैया को अपने इस्तेमाल की चीज़ समझती। तुम्हारे भैया उसे अपनी कमाई का सब पैसा दे देते थे और स्टेला उन्हें अपने एकांउट में जमा करती रही थी। फिर एक दिन तुम्हारे भैया ने स्टेला को किसी अन्य के साथ आपात्तिजनक स्थिति म देखकर टोका तो यह कहते हुए कि वह खरीदी हुई गुलाम नही है, अपना कपडा-पैसा-जेवर लेकर चलती बनी। तुम्हारे भैया तब से टूट से गए है लेकिन मैंने तो पहले ही उन्हे समझाया था कि इग्लैंड मे यह कहावत मशहूर है कि अँग्रेजी मौसम और अँग्रेज़ी औरत का कोई भरोसा नहीं होता।

❑

अध्यक्षता एक कविसम्मेलन की

अध्यक्ष बनने की ललक किसे नहीं होती और फिर कविसम्मेलन की अध्यक्षता का अर्थ होता है, बड़े-बड़े कवियों में सम्माननीय समझा जाना। फिर यह चाह अहिंसक भी है और वैध भी। इसलिए अपने दिल में भी चाह रहती थी कि कभी किसी कवि-सम्मेलन की अध्यक्षता करने का अवसर मिले। परंतु जब वर्षों तक किसी आयोजक ने अपने को इसके योग्य न समझा तो मैंने इस कहावत पर अमल करना होशियारी समझा कि बिन रोए तो बच्चे को माँ भी दूध नहीं पिलाती है और मित्रों के माध्यम से मैंने इशारतन यह बात आयोजकों को पहुँचानी शुरू कर दी कि अब मुझे बुलाना है तो अध्यक्ष बनाकर ही बुलाएँ। तभी एक दिन बाज़ार से भाजी ख़रीदकर लौटने पर मेरी धर्मपत्नी ने बताया कि घूरेपुर से एक सज्जन कवि-सम्मेलन की अध्यक्षता का निमंत्रण देने आए थे। आपके न मिलने पर शाम को फिर आने का कह गए हैं। सुनकर मेरी बाँछें खिल गईं पर तभी शंका हुई कि कहीं वह सज्जन इस बीच अपना मन न बदल लें और वापस न चले जाएँ, इसलिए पत्नी को अधैर्यपूर्वक डाँटते हुए कहा, 'अरे, उन्हें आवभगत करके रोक भी तो सकती थीं? मैं कितनी देर के लिए बाजार गया था?' पत्नी समझदार हैं। वह मेरी उतावली खूब समझ रही थीं इसलिए वह कोई उत्तर न देकर बस मुस्करा दीं। ख़ैर, सायंकाल वह सज्जन मेरी आशंका के विपरीत फिर उपस्थित हुए और मुझसे अध्यक्षता-हेतु अनुरोध किया। यद्यपि कार्यक्रम के विषय में बातचीत करने पर मुझे आमंत्रित किया जा रहा है, परंतु मेरे द्वारा ऐसा

अवसर खोने का सवाल ही नही था और मैंने उन सज्जन पर अहसान-सा जताते हुए निमत्रण सौ फीसदी स्वीकार कर लिया। अपना सौजन्य भेट (महनताना) भी नही बताया।

बक्से से अपना एक मात्र कुर्ता व उससे मिलता-जुलता पायजामा निकलवाकर उस पर कलफ, प्रेस आदि करवाई, श्रोताओं को अच्छी लगनेवाली दो-तीन रचनाओं को कहने का पुनरभ्यास किया और इस तरह अध्यक्ष के रूप मे अपना रग जमाने के सपनों मे डूबते-उतरते कवि-सम्मेलन का दिन आ गया। मुझे सबेरे आठ बजे की रेलगाडी पकडकर मडिहान पहॅुचना था और वहॉ से बस द्वारा घूरेपुर पहुँचना था। रेलव इन्क्वाइरी मे पूछने पर पता चला कि गाडी राइट टाइम है और सबेरे-सबरे पत्नी द्वारा सफलता-हेतु प्रस्तुत किया गया दही और पेड़ा खाकर मै रेलवे स्टेशन को रिक्शे पर चल दिया। प्लेटफार्म पर पहुँचा तो घोषणा की जा रही थी कि मडिहान जानेवाली गाड़ी अपने निश्चित समय से 30 मिनट लेट प्लेटफार्म न 5 पर आएगी। प्लेटफार्म पर चहलकदमी करने लगा, क्योंकि लकडी की खुरदरी बेंच पर बैठने से कुर्ते-पायजामे की क्रीज खराब होने का डर था। आठ बजकर 35 मिनट तक जब गाड़ी दूर-दूर तक न दिखाई दी, तो इन्क्वाइरी पर गया तो वहॉ लगी श्याम-पट्टिका पर लिखा जा रहा था कि मड़िहान जानेवाली गाड़ी अपने निश्चित समय 1 घटा 20 मिनट लेट प्लेटफार्म नम्बर 5 पर आएगी। यद्यपि ऐसे अवसरो पर अपने क्रोध व मुस्कराहट को पी जाना ही बुद्धिमानी होती है, परंतु आज मुझसे नहीं रहा गया और इन्क्वाइरी वाले से पूछ ही बैठा कि जब गाड़ी इतनी लेट है तो गाड़ी आने के 30 मिनट पहले तक राइट टाइम बताने की क्या तुक है? इन्क्वाइरी पर बैठा कर्मचारी आज कुछ ख़ास अच्छे मूड में था, अत. गाली-गलौज पर उतरने के बजाय बोला, 'मैं क्या जानूँ! ट्रैफिक सुपरिंटेंडेट से पूछो।' इतने मे मुझे अक्ल आ गई कि इज़्ज़त बचानी है तो चुपचाप प्रतीक्षा करो और मै वहाँ से खिसक लिया। जब 9 बजकर 30 मिनट तक गाड़ी प्लेटफार्म नम्बर 5 पर नहीं आई और मेरी बेचैनी फिर बढ़ने लगी, तो साहस कर एक सीधे मे दिखनेवाले कुली से गाडी के बारे में पूछ लिया। वह फुरसत मे था, धीरे से मुस्कराकर बोला, 'गाडी तो 15 मिनट

से 3 नंबर प्लेटफारम पर ठाढी है। का सोवत रहौ? मैं दौड़कर 3 नंबर प्लेटफार्म पर पहुँचा तो गाडी सीटी देकर खिसकने लगी थी। चलती गाडी में डंडे पर लटककर डिब्बे मे पहुँच तो गया पर वहाँ पाया कि एक पैर की चप्पल नदारद थी।

मड़िहान पहुँचकर बस का टिकट की लाइन में लग गया। उस दिन बड़ी भारी सहालग थी और बस स्टेशन का दृश्य देखकर ऐसा लग रहा था कि यदि कोई उस दिन विवाह न कर सका तो जीवन-भर कुँआरा रह जाएगा। बडी कसरत-मशक्कत और दो बसें छोडने के बाद घूरेपुर की टिकट मिली। बस की जो बर्थ तीन सवारियों के लिए बनी थी, उसी पर बैठी चार सवारियो के बाद कंडक्टर ने मुझे किनारे पर बिठा दिया। मै तीन इंच खाली जगह पर डंडे पकड़कर अधलटका-सा बैठ गया, उस पर भी मुझसे सटा आदमी बीच-बीच मे मुझ पर गुर्राता रहा कि अपनी जगह पर ठीक से बैठो। रात 9 बजे जब मैं घूरपुर पहुँचा तो एक दर्शनीय वस्तु बन चुका था। कस्बे के बच्चे शायद सो चुके थे, नही तो पागल समझकर कंकड जरूर मारते और गाँव के सारे कुत्ते कवि-सम्मेलन का आनंद लेने पंडाल में जा बैठे थे, इसलिए उनके दौड़ने से भी बच गया।

मैं दिन-भर का लुटा-पिटा-सा कवि-सम्मेलन के पंडाल की तरफ जाते हुए सोच रहा था कि डेढ घंटा लेट आने का क्या बहाना बताऊँगा? मन में यह शंका भी हो रही थी कि यह समझकर कि मैं नही आऊँगा किसी और को अध्यक्ष न बना दिया गया हो। पर जब पंडाल में पहुँचा तो पाया कि पंडाल अभी तक मुझसे भी अधिक दयनीय हालत में था—कोई कुर्सियाँ रख रहा था, तो कोई लट्टू लगा रहा था और कोई मंच की धूल झाड़ रहा था। मेरे स्वागत मे आए आयोजक मेरी हालत देखकर जितने भौंचक हो रहे थे, उतने ही अपने पंडाल की हालत देखकर संकुचित भी थे। वे मुझे मंच पर बिठाकर जल्दी से कविता पाठ के आरंभ की तैयारी में जुट गए। संभवत: वे अपने घरों से खा-पीकर आए थे, जिससे किसी को मेरे भोजन का ख़याल नहीं रहा था और अपने पेट मे चूहे उछल-कूद कर रहे थे।

आधा घंटा बाद माँ सरस्वती की वंदना से कविता-पाठ आरंभ

हुआ। तब तक पडाल श्रोताओ से भरने लगा था और मंच पर कवि उसी तरह ठुँस गए थे जैसे आज की बस में सवारियाँ। पहल उदीयमान कवियो को पढने का अवसर दिया गया। उनमें से अधिकतर ने कविता सुनाने मे कम समय गँवाया, वरन अपनी तुच्छता बखानने और उस हेतु श्रोताओं से क्षमा माँगने में अधिक समय का सदुपयोग किया। उन्हें -सुनते-सुनते श्रोतागण जब इक्का-दुक्का उठने लगे तो सचालक ने सभी कवियो स केवल एक रचना पढ़ने का अनुरोध किया। परतु अब तक मंजे हुए कवि कविता पढ़ने आने लगे थे और उन्हें एक से अधिक कविता पढ़ने के अनेक नुस्खे आते थे। कभी कविता से पूर्व कुछ मुक्तक पढ़कर अथवा कभी अपने किसी नवीन प्रयोग का श्राताओ स परिचय कराकर। हास्यरस के कवि स्वर अथवा शब्दों का प्रयोग कम करते थे वरन् अपने भोड अग-संचालन से श्रोताओं को प्रभावित करने का अधिक प्रयत्न करते थ, जिससे एक ही कविता पूरी होने मं तीन कविताओं का समय ले लती थी।

कवयित्रियाँ ऐसी लय और ताल क साथ अपनी कविताओं की पक्तियो को दुहराती-तिहराती थीं कि कम-से-कम दा कविताएँ कहने का समय एक ही गीत में लग जाए। इस प्रकार धीरे-धीरे श्रोतागणों का धैर्य समाप्त होने लगा और हर कवि की कविता समाप्त होते ही ढेर के ढेर श्रोतागण उठने लगे। पंडाल मे वे ही बच्च जात थे, जो उम्म दौरान सा रहे होते थे। धीरे-धीरे पडाल खाली लगने लगा। फिर नबर आया सचालक महोदय और शीर्ष कवियों का। उनको टोकनेवाला कौन था? इसका परिणाम यह हुआ कि अपना नंबर आते-आते पडाल मे गिने-चुने लाग ही रह गए। अधिकतर कवि भी अपनी कविता सुनाने के बाद कोई-न-काई वहाना बनाकर खिसक लिए थे। अंत में मेरा नंबर आन पर मैने देखा कि अब केवल कविता के वास्तविक प्रेमी छ:-सात श्रोता ही पडाल में रह गए है, अत: अपनी विद्वत्ता का झडा गाड़ने-हेतु एक क्लिष्ट साहित्यिक कविता सुना डाली। कविता समाप्त होने पर श्रोताओ ने जब किसी प्रकार की प्रतिक्रिया व्यक्त नहीं की तो मैने आयोजक महोदय स पूछ लिया, 'क्या मेरी कविता ऐसी थी कि विद्वान व्यक्ति भी समझ न

सकें।' इस पर उन्होने विनम्रतापूर्वक परंतु मुस्करात हुए उत्तर दिया, 'आपकी कविता इन लोगों की समझ मे कैसे आती? य तो केवल वे लोग बचे थे, जिन्हें कवि-सम्मेलन समाप्त होते ही दरी-कनात उठाकर ले जाने थे।'

मैं कवि-सम्मेलन की ऐसी अध्यक्षता से भर पाया। अब कोई मुझसे अध्यक्षता करवा ले तो जानूँ।

❑

जन्मसिद्ध अधिकार

एक पाश्चात्य विद्वान के अनुसार मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है। समाज मनुष्य को कतिपय लिखित अथवा अलिखित अधिकार देता है और साथ ही उसके लिए कतिपय कर्त्तव्य भी निर्धारित करता है। एक दूसरे पाश्चात्य विद्वान ने मनुष्य के कतिपय जन्मसिद्ध अधिकार भी गिनाए हैं जैसे जीवन का अधिकार। ऐसा प्रतीत होता है कि इन दोनो पाश्चात्य विद्वानो को अपने जीवन मे कभी भारत आने का अवसर नहीं मिला था, क्योंकि उनके द्वारा बताए गए मानवीय अधिकारो की संख्या सकुचित एवं सीमित है और इनको पढकर भारतीय विद्यालयो का कोई भी छात्र (अथवा छात्रा) इन पाश्चात्य समाजशास्त्रियों के सीमित ज्ञान पर आश्चर्यचकित हो सकता है, क्याकि भारतीयो को तो अनेको एसे अतिरिक्त जन्मसिद्ध एव पुरुषार्थसिद्ध अधिकार प्राप्त है, जिनकी पाश्चात्य विद्वान कल्पना भी नही कर सकते हैं।

भारतीय अपनी परपराओ, विचारो एवं आस्थाओ से उदार प्रकृति के व्यक्ति हैं, अतः उन्होंने अपने अधिकतर अधिकार 'जन्मसिद्ध' की श्रेणी मे रखे है, जिससे उन पर बहस-मुबाहिसे की गुंजाइश ही न रहे। उनके ये अधिकार अनगिनत है और उनका उपभोग करने हेतु उन्हें किसी कोर्ट-कचहरी की मदद की आवश्यकता नहीं होती है। इतनी लबी प्रक्रिया में पड़ने की नौबत आए तो अधिकार अधिकार ही क्या हें? जब अधिकार है तो उसका उपभोग करने के लिए बस भुजबल, धनबल अथवा जनबल की उपलब्धता ही पर्याप्त होनी चाहिए।

'ढोल, गॅवार, सूद्र, पसु, नारी, य सब ताड़न के अधिकारी' हमारी सामाजिक मान्यताओ का मूल-मत्र है-अर्थात् यदि कोई निरीह एव वेजुबान है ता उसे प्रताडना देने का जन्मसिद्ध अधिकार अन्यों को प्राप्त हे। इस अधिकार का सदुपयोग बाप अपने बच्चों पर, पति अपनी पत्नी पर, सास अपनी बहू पर, बेटे अपने अशक्त व बूढे मॉ-वाप पर, शक्तिशाली निर्बल पर और बहुसंख्यक अल्पसंख्यक पर करने में यदा-कदा ही चूकते हैं।

इस विषय में हमारी सामाजिक एव प्रशासकीय व्यवस्था पूर्णत: चुस्त-दुरुस्त है और साधारणत: आपके इन अधिकारों मे खलल डालने से दूर ही रहती है वरन् प्राय: आप द्वारा उनका खुला उपभोग करने मे आपकी सहायता ही करती है। यदि आपको मेरे द्वारा उद्घाटित इन तथ्यो पर कोई शक हो तो आज घर लौटकर अपनी पत्नी की धुनाई कर दीजिए। पत्नी के भय और पीडा से चिल्लाने की आवाज पर पडासी यह सोचकर चुप्पी मार जाएँगे कि पति-पत्नी का मामला है, हम क्यो बीच म पड़ें और यदि पत्नी आपके विरुद्ध रिपोर्ट लिखाने थाने चली गई तो पहले तो अपनी ही फ़जीहत कराके लौट आएगी। यदि किसी जोरू क गुलाम' टाइप थानाध्यक्ष ने उसकी रिपोर्ट लिख भी ली, तो भी आप सौ फीसदी निश्चित सो सकते है, क्योंकि जॉच करनेवाला अधिकारी उसे फाहिशा (अनियत्रित चरित्र की) घोषित कर आपके पक्ष मे ही रिपोर्ट लगाएगा।

हमने अपनी स्वतंत्रता बडे बलिदानो के बाद प्राप्त की है और हम अपनी दिनचर्या के दौरान अपनी स्वतत्रता मे किसी प्रकार की दखलंदाजी बरदाश्त नहीं करते है, जैसे यदि आप बच्चो और महिलाओ से भरी हुई गली के किनारे अथवा स्कूल की दीवाल की ओर मुँह करके पैंट के बटन खोलकर लघुशंका-निवृत्ति का सुख प्राप्त कर रहे है और कोई सिरफिरा आप द्वारा अपन इस आनंद को जनसाधारण में नि:शुल्क बॉटन पर आपत्ति कर दे, तो आपको उसे गरिया अथवा चपतिया देने का पूर्ण अधिकार है। आप आश्वस्त रहें कि आस-पास के तमाशबीन आपके इस छोटे-से आनंद-आबंटन के कार्य मे आपत्ति उठाने-हेतु उसी व्यक्ति की

लानत-मलानत करेंगे, बशर्ते वह व्यक्ति देखने मे आपसे अधिक संभ्रांत न लगता हो।

हम सभी जानते है कि इस देश मे वैभव, यश एवं राजनीतिक प्रतिष्ठा कमाने की जन्मजात महत्त्वाकांक्षा रखनेवाले किसी भी व्यक्ति का घूसख़ोरी, हत्या एवं अपहरण मे लिप्त होने का सर्वमान्य अधिकार बनता है। हमारी व्यवस्था नागरिकों के इस अधिकार की रक्षा-हेतु निशि-दिन जागरूक रहती है। अगर आप हत्या करने के अपने अधिकार का उपभोग दिल्ली मे करते हैं तो मणिपुर जाकर छुट्टा घूमने का आदेश प्राप्त करने का अधिकार आपका बनता है। मुझे पूर्ण विश्वास है कि हम आगामी शताब्दी में अतर्राष्ट्रीय संस्थानो (जैसे आई.सी.जे , हेग) से भी छुट्टा घूमने के आदेश प्राप्त करने के अपने अधिकार को प्राप्त करन में सफल हो सकेंगे।

सरकारी नौकरी प्राप्त करने के विषय मे भी आपके बड़े व्यापक अधिकार है। बस आपके रिसोर्सेज का स्तर पर्याप्त ऊँचा होना चाहिए। इस विषय को स्पष्ट करन के लिए एक अदना-सा उदाहरण प्रस्तुत कर रहा हूँ। एक बार एक पुलिस कांसटेबिल के पद का अभ्यर्थी जनपद सीतापुर में पुलिम्प द्वारा नाप-जोख मे निम्नस्तर का पाए जाने के कारण चयन-परीक्षा मे नहीं बैठने दिया गया। परीक्षा समाप्त होने के बाद उसने मुख्य चिकित्साधिकारी, लखनऊ (मुख्य चिकित्साधिकारी, सीतापुर नहीं) से प्रमाण-पत्र प्राप्त कर लिया कि उनकी नाप-जोख निर्धारित मानक के अनुसार सही है। इस प्रमाण-पत्र के आधार पर अपने अधिकार का उपयोग करते हुए उसने आदेश प्राप्त कर लिया कि चूँकि मुख्य चिकित्साधिकारी, लखनऊ की नाप के अनुसार यह अभ्यर्थी उपयुक्त है और नियमों के अनुसार मुख्य चिकित्साधिकारी द्वारा की गई नाप ही (पुलिस द्वारा की गई नाप नहीं) मान्य है और चूँकि वह चयन-परीक्षा समाप्त हो चुकी है, जिसमें इसे बैठना था, अत: इस अभ्यर्थी को बिना चयन-परीक्षा मे सम्मिलित हुए भी पुलिस कांसटेबिल नियुक्त किया जावे। यह तो छोटी नौकरी की बात है। यदि आप अपने अधिकारो के प्रति सजग हैं ता बडे-बड़े ओहदे वाली नौकरियाँ भी प्राप्त कर सकते है।

मान लीजिए आपने थर्ड डिवीजन में इंटरमीडिएट पास किया है और प्री-मेडिकल टैस्ट में चुना जाना आपके लिए संभव नहीं है तो चुपचाप मिथिला, भागलपुर, मनीपाल या बेलगॉव के किसी असली या नकली मेडिकल कालेज में भर्ती हो जाइए। एक वर्ष बाद अपने अधिकार के समुचित उपयोग से आप दिल्ली या लखनऊ के किसी भी नामी कालेज में अपने स्थानान्तरण का आदेश प्राप्त कर सकते है। फिर फेल-फाल होते हुए भी अगले चार वर्ष बाद आपको अपनी अज्ञानता के फलस्वरूप मानव-हत्या करने का अधिकार प्राप्त हो जाएगा और एक कमाऊ नौकरी भी मिल जाएगी।

इस देश की पुरानी पीढ़ी के लोगो के लिए सबसे अधिक संतोष एव प्रसन्नता का विषय यह है कि देश के विद्यालयों में पढ़नेवाले छात्र अपने अधिकारो के प्रति न केवल जागरूक हैं वरन् उनका सदुपयोग बडी मुस्तैदी से करते हैं। परीक्षा मे नक़ल करना उनका जन्मसिद्ध अधिकार है। यह बात व न कवल जानते हैं वरन् अपने शिक्षकों और अन्य अज्ञानी व्यक्तियों के ज्ञानवर्धन हेतु विद्यालयो की दीवालों में यह मंत्र-वाक्य जगह-जगह पेट भी करते रहते हैं। इस अधिकार की प्राप्ति के मार्ग मे बाधक शिक्षकों को सन्मार्ग पर लाने हेतु वे हडताल, गाली-गलौज, धौल-धप्पा अथवा आवश्यकतानुसार छुरीबाज़ी या बमबाजी जैसी सामान्य विधाओं का प्रयोग करते है। मेरे एक शिक्षक मित्र ने इस विषय पर एक बडी शिक्षाप्रद घटना सुनाई थी। उस समय वह नए-नए शिक्षक नियुक्त हुए थे और आदर्शवादिता के घुन ने उनके मस्तिष्क को अभी तक कुरेदना बंद नहीं किया था। परीक्षा में पर्यवेक्षक की ड्यूटी देते हुए उन्होने सख्ती से सभी छात्रों द्वारा नकल हेतु लाई गई किताबें व कापियॉ उनसे छीनकर अलग रख दीं। बस फिर क्या था, सभी परीक्षार्थी 'नक़ल हमारा जन्मसिद्ध अधिकार है' का नारा लगाते हुए कमरे से बाहर निकल गए और प्रधानाचार्य का घेराव कर दिया कि इस पर्यवेक्षक को कमरे से निकाला जाए। प्रधानाचार्य अनुभवी व्यक्ति थे और छात्रों के जन्मसिद्ध अधिकार का हनन करने की न उनमें इच्छा थी और न सामर्थ्य। उन्होंने तुरत मेरे मित्र को कमरे से बुलाकर स्टाफरूम में बिठलवा दिया।

परीक्षार्थी अपनी जीत पर प्रसन्न होकर अपनी किताबें व कापियाँ लेकर परीक्षा-कक्ष मे चले गए। लगभग पंद्रह मिनट बाद वही छात्र फिर प्रधानाचार्य के कमरे मे घुस आए और नक़ल के जन्मसिद्ध अधिकार का नारा लगाने लगे। प्रधानाचार्य ने पूछा कि अब तुम्हे कौन रोक रहा है। इस पर वे बोले, 'पर हम नकल करें कैसे? आपने किसी ऐसे अध्यापक को हमारे कमरे मे ड्यूटी पर लगाया ही नहीं है, जो हमे बताए कि अमुक प्रश्न का उत्तर किस किताब के किस पृष्ठ पर है।' अनुभवी एव समझदार प्रधानाचार्य ने तुरंत ऐसे उदारमना अध्यापक की उस कमरे मे पर्यवेक्षण हेतु ड्यूटी लगाकर परीक्षार्थियों के अधिकारों की रक्षा का समुचित प्रबध कर दिया।

हमने असगंठित, निर्धन, निर्बल और निम्न सामाजिक स्तर के व्यक्तियों को भी अनेक मौलिक अधिकार दिए हैं। जैसे शोषण किए जाने का अधिकार, अशिक्षा का अधिकार, भूख का अधिकार एव मारपीट, बलात्कार अथवा अपनी हत्या कराने का अधिकार। हम चौकस भी रहते है कि ये लोग अपने इन अधिकारों का उपयोग करने मे कहीं चूक न जाएँ।

मुझे पूर्ण आशा है कि नई शताब्दी में हम अपने इन अधिकारों मे वृद्धि करके अपने को और अधिक अधिकारग्रस्त कर लेगे। अभी तक हम अपने लिए केवल जन्मसिद्ध अधिकार ही बना पाए हैं. आगे जन्म-जन्मांतर के अधिकार बना लेने की इस देशवासियो की क्षमता के प्रति मै आश्वस्त हूँ।

❑

सरदार जी का बगीचा

मै अपनी पत्नी नीरजा के साथ देवर्षि द्विवेद्वी के यहॉ रात में पहुॅचा था। जो गोदरेज सोप्स लिमिटेड मुबई में काम करता है और कंपनी द्वारा निर्मित गोदरेज हिलसाइड आफिसर्स कालोनी के सी-ब्लाक के भूतल के एक फ्लैट में रहता है। सुबह जागने पर बड़ा खुशनुमा दृश्य देखने को मिला। मैं बालकनी मे आकर खड़ा हुआ तो देवर्षि व उसकी पत्नी अनामिका भी आकर खड़ी हो गई। बालकनी के बाई ओर घना वन था, जिसे देखकर देवर्षि ने कहा कि मैंने अपने फ्लैट का नाम फारेस्ट-व्यू फ्लैट रखा है। बालकनी के सामने एक सुंदर-सा घास का लान था। लान के अत में पाँच मज़िला डी ब्लाक स्थित था और उसकी दीवाल के किनारे सीजनल फूलों के पौधे पुष्पित हो रहे थे। उन्हीं में दो पपीते के पेड़ व दो नारियल के पेड़ भी लगे हुए थे। नारियल के पेड़ पर लदे हुए नारियलो को देखकर नीरजा ने कहा, 'अहा. पेड से तोड़कर नारियल का पानी पिया जाए, कैसा मज़ा आएगा।'

इस पर अनामिका उन्हे सावधान करते हुए बोली, 'अरे, ऐसी बात करिएगा भी नहीं। कहीं सरदार जी ने सुन लिया तो आफत आ जाएगी।'

हम दोनों समझे कि यह सरदारों पर बनाया गया कोई चलताऊ जोक (व्यंग्य) होगा और अनामिका की ओर इस तरह देखने लगे कि वह इसकी व्याख्या करे। इस पर वह बोली, 'हम लोग गत सप्ताह जब इस फ्लैट मे आए थे, तभी पडोसियों ने हमें सावधान कर दिया था कि लॉन मे फूलों को कभी तोडने या उन्हें देर तक देखने की गुस्ताखी मत करना नहीं तो सरदार

पहले बना था और भूतल का एक फ्लैट गोदरेज कपनी मे काम करनेवाले इन सरदार जी को आवटित हुआ था। मग्दार जी आर्मी मं शार्ट सर्विस कमीशन में आफ़िसर रह चुके हैं और अत्यंत अनुशासनप्रिय हैं। उन्हे फूल-पौधो से बहुत लगाव है। उनके फ्लैट से सटी काफ़ी जमीन ख़ाली पडी थी और सरदार जी ने मेहनत कर उसम खूब फूल, पौधे व नारियल, पपीते के पेड़ लगाकर सुदर बगीचा बना दिया था। सरदार जी कपनी के काम के अलावा शेष समय इसी उपवन को देते रह हैं। उन्हे कतई गवारा नही हुआ है कि कोई व्यक्ति उनके बगीचे से फल-फूल तोड़ ले या उन्हे तोडने-जैसी निगाहो से देखे भी। दो वर्ष पहले जब यह सी ब्लाक वनना शुरू हुआ तो कपनी ने सरदार जी स बग़ीचा ख़ाली करने को कहा, क्योंकि उसी जगह पर ईट, गारा, सीमेंट आदि रखकर यह ब्लाक बनना था। मरदार जी अड़ गए कि वह अपने लगाए बगीचे को बिल्कुल नष्ट नहीं होने दगे। कंपनी के अधिकारी इससे बहुत क्रोधित हो गए और सरदार जी की नौकरी पर बन आई थी परंतु सरदार जी को जानने वाले कुछ अन्य अधिकारियो की सिफारिश पर कंपनीवालो ने सरदार जी की नौकरी तो नहीं ली, लेकिन उन्हे उसी ब्लाक मे भूतल से तृतीय तल के फ्लैट पर शिफ्ट कर दिया और बग़ीचे की ज़मीन पर ईट-पत्थर डालकर यह मी-ब्लाक वनवाना आरभ कर दिया। सरदार जी बग़ीचे को उजडते देखकर कई दिन रोते देख गए थे और एक सप्ताह तक छुट्टी पर रहे थे एवं उन्होने ठेकेदार व मज़दूरों को समझाबुझाकर अपने ब्लाक के भवन से सटी हुई लगभग दो गज ज़मीन मे लगे बगीचे को नष्ट होने से बचा लिया था। इसमे लगे दो पपीते व दो नारियल के पेड भी बच गए है। सी-ब्लाक के निर्माण के उपरात दोनो ब्लाकों के बीच की जमीन पर, जिस पर पहले मरदार जी का कब्ज़ा था कपनी ने घास लगवाकर लॉन बना दिया है। यद्यपि सरदार जी अब तीसरी मज़िल के फ्लैट में रहते हैं, परंतु अब भी घास के इस लॉन व बचे हुए बगीचे पर अपना अधिकार मानते हैं। सरदार जी रोज इसमें माली का काम करते हैं और अपने फ्लैट के कमरे की खिडकी मे इसकी निगरानी करते रहते है।

अनामिका का अंतिम वाक्य सुनकर हमे हँमी आ गई और मै वाल

पडा, 'वह सरदार जी है, तो बात को इतना न बढ़ाओ। अब जब वह ऊपर रहने लग हैं तो क्या निगरानी करते होंगे।'

इस पर देवर्षि जल्दी से बोल पड़े, 'अरे अनामिका असली बात तो वताना ही भूल गई। एक वार सरदार जी ने पाया कि रोज़ उनके बगीचे के कुछ फूल रात्रि में कोई तोड़ ले जाता है। उन्होंने कई दिना तक अपनी खिड़की में रात्रि म झाँक-झाँककर चोर को पकडने का प्रयत्न किया परतु सफलता नहीं मिली, तो एक रात में सोने के बजाय वह भूतल की बालकनी के किनारे कुर्सी डालकर बैठ गए। गर्मी अधिक लगने पर उन्होने अन्य कपडे उतार दिए और सिर्फ़ कच्छा पहने रहे तथा अपनी पगड़ी खोल ली और सर व दाढी दोनो के बाल फहरा लिए। सबेरे लगभग 4 बजे चोर आया और रोज की तरह निर्भय होकर फूल तोडन लगा, तो सरदार जी चुपचाप उसे पकड़ने को पास आने लगे। तभी आहट स उसकी निगाह ऊपर गई तो वह समझा कि भूत आ गया है और वह तोडे हुए फूल व अपनी टोकरी छोड़कर भागा। सरदार जी ने पीछ से दौडाया तो वह भूत-भूत चिल्लाता हुआ कालोनी के मुख्य द्वार से निकल गया। वहाँ पर ऊँघते चौकीदार ने आँखे मलते हुए जब अधनगे सरदार जी को दौड़कर आते देखा ता वह बेहोश हो गया।

इस घटना के बाद कभी किसी ने सरदार जी के फूल तोडन की हिम्मत नही की है। हम लोग यह सब सुनकर हँस रहे थे। फिर तैयार होकर हम चारो लोग बंबई की प्रसिद्ध एलीफैंटा केव्ज़ देखने चले गए। सायकाल जब वापस आए तो किचेन में बाई खाना बना रही थी। वहाँ चार बड़े-बडे नारियल रखे थे। बाई ने बताया- ये नारियल सरदार जी ने अपने वग़ीचे से तोड़कर भेजे है।'

हमे आश्चर्यचकित होते देख बाई कहने लगी– 'आप अभी इस फ्लैट मे नए आए है, इसलिए आपको पता नहीं कि हर फ्लैट में मेहमानो के आने पर सरदार जी अपने बग़ीचे से नारियल, पपीते आदि, जो भी उपलब्ध हो, भेजते हैं।'

हम अवाक् एवं आह्लादित थे।

❑

घाघ

आप शायद सोचें कि मैं बड़ा घाघ हूँ, अच्छा हास्य-व्यग्य लिखना नही आता है तो घाघ पुराण ही लिखने लगा। पर बात ऐसी नहीं है। बात यूँ है कि मैं एक अधिकारी हूँ, जो घाघहीनता के कारण महत्त्वहीन स्थान पर नियुक्त है: परंतु जब भी कोई महत्त्वपूर्ण कुर्सी ख़ाली होती है तो कुछ लोग उसके संभावित भरनेवालों मे मेरा नाम भी उछाल देते है, बस फिर कई कनिष्ठ अधिकरी मेरी पूछताछ भी आरभ कर देते हैं। ऐसा ही एक अवसर आने पर कुछ लोग पहली बार मेरा हाल (आशीर्वाद) लेने चले आए थे तो मेरी पत्नी न हॅसते हुए मुझसे कहा था कुछ लोग बडे घाघ होते हैं।' हर भोंडा एव कानों मे चुभनेवाला शब्द मेरे मस्तिष्क में घर कर जाता है और उसे अथवा उसके तत्सम शब्दों को बार-बार दोहराने और उन पद विचार करने को मजबूर करता रहता है और आप भी मानेंगे कि 'घाघ' शब्द चाहे कर्णकटु न हो; परंतु भोंडा अवश्य है। अत: पत्नी की बात सुनकर मेरे मस्तिष्क मे 'घाघ' शब्द चरखी के समान घूमने लगा, और उस त्रासदी से मुक्ति पाने-हेतु मैंने यह 'घाघ पुराण' लिखना आरंभ कर दिया, जिसको पढ़ना शायद आपकी अपनी त्रासदी साबित हो।

'घाघ' शब्द की व्युत्पत्ति का इतिहास मुझे ढूँढने पर भी नहीं मिल पाया है। मैंने हिदी व सस्कृत भाषा के विद्वानो से जब इस विषय मे पूछा, तो वे केवल इतना कह पाए, 'बड़े घाघ हो, मेरी परीक्षा ले रहे हो?' मैं समझ गया कि वे सचमुच घाघ है। अपनी अज्ञानता पर पर्दा डालने का सटीक तरीका ढूँढा है।

मैंने यह शब्द सर्वप्रथम तब सुना था, जब कक्षा छह मे कृषि-विज्ञान विषय में 'घाघ' कवि की कृषि पर लिखी कविताएँ पढ़ाई गयी थीं। मेरे घर मे इस शब्द का प्रयोग नही होता था, क्योंकि शायद मेरे घर मे कोई घाघ नहीं था। नही तो कृषि की कक्षा में सुना हुआ यह शब्द इतना अजीब न लगता और मेरे मस्तिष्क पर ऐसा स्थायी प्रभाव न छोडता कि आगे चलकर पूरा देश घाघमय लगने लगता। मुझे उस समय 'घाघ' शब्द न तो बोलने मे जिह्वाप्रिय लगा था और न सुनने मे कर्णप्रिय। इसलिए अपनी आदत के अनुसार यह अनोखा शब्द सुनते ही मेरा मस्तिष्क उसकी अक्षरिक व्याख्या करने लगा था। पहले तो मैंने सोचा था कि इन कवि महादय के पिता घामड-घसियारे रहे होगे, या घायल घड़ीसाज भी हो सकते हैं, और अपना नाम बेटे के द्वारा चलाते रहने के उद्देश्य से उसका नाम सक्षेप में घाघ' रख दिया होगा। पर मेरे कृषि अध्यापक ने जब यह बताया कि यह तखल्लुस (उपनाम) तो कवि महोदय ने स्वयं चुनकर रखा था तो मुझे लगा था कि कवि महोदय आवश्य घाघ रहे होग- नही तो भला ऐसा बेतुका नाम रखने की क्या आवश्यकता थी। फिर कक्षा मे उनकी कविता पढ़ाई गई। क़दम-कदम पर बाजरा, मेढक कूदे 'ज्वार' यानी बाजरा को एक-एक कदम दूरी पर बोओ और ज्वार के पौधो मे इतनी दूरी हो कि उसमें मेढक कूद सके, तो मै समझ गया कि जरूर मेढक के गुणों की याद आने पर कवि महोदय ने अपना नाम घाघ रख लिया होगा। मेढक भी बडा घाघ होता है। जाड़ा आया कि जमीन के अदर 'हाइबरनेशन' मे चला गया और खाने-पीने और रजाई ओढ़ने की छुट्टी, और जहाँ गर्मी आई और ज्वार बोया गया कि उसमें क़दम-कदम पर कूदना शुरू। 'घाघ' कवि का ज़माना अँग्रेजो का ज़माना था, इसलिए यह नहीं हो सकता कि उन्होंने नेताओं को देखकर अपना उपनाम घाघ रखा हो। यदि आज का ज़माना होता तो मैं इस बात पर शर्त लगा सकता था कि उन्होंने मेढक के गुणो को देखकर अपना नाम घाघ नहीं रखा था वरन् नेताओं के गुणो को देखकर अपना नाम घाघ रखा था। जहाँ चुनावी घोषणा हुई कि नेता लोग अपने-अपने क्षेत्रो मे गाजे-बाजे के साथ सदल-बल दिखाई देने लगते हैं और चुनाव समाप्त होने पर अपनी एक

महीने की मेहनत को पाँच साल तक भुनाने को गायब हो जाते है। वे निजी लाभ की सभावित परिस्थितियों पर सदैव घाघ-दृष्टि रखते है। लो 'घाघ पुराण' लिखते-लिखते गृद्ध-दृष्टि से बेहतर शब्द दिव्य 'घाघ-दृष्टि' का आविष्कार हो गया।

'घाघ' शब्द का अर्थ शायद ही किसी शब्द कोश में मिले, और यदि कहीं मिल भी गया तो वह इस शब्द को अपने सपूर्ण आयामों एव वितानों में परिभाषित नही कर पाया गया होगा। परतु घाघ मुझे जीवन के समस्त क्षेत्रो व पहलुओ मे मिलते रहें हें। अनुभव से मैंने समझा है कि घाघ वह है, जो स्वार्थ की बात सोचने एव उसकी प्राप्ति-हेतु योजनाबद्ध रूप से उपाय करने तथा स्वार्थसिद्धि के उपरांत अनावश्यक हो जाने पर साधन को नि:संकोच त्याग देने में माहिर हो। परतु सब घाघ एक जेसे नहीं होते है। उनमे अनेक जातियाँ एव गोत्र होते हैं, और कुछ अग्रणी घाघ होते हैं और कुछ पिछड़े घाघ। परंतु जहाँ तक मेरा ज्ञान है, उनमे अभी तक आरक्षण-व्यवस्था लागू नही हे, अत: बडे-बडे नामी घाघो की सताने कभी-कभी बडी सीधी-सादी (घाघ का विलोम) हो जाती हैं और बडे-बड़े वीतरागियो की सताने कभी बडी घाघ निकलती हैं। सभी जातियों एवं गोत्रो का वर्णन दे पाना इस लघु पुराण में सभव नहीं है, अत: केवल प्रमुख वर्गो के नाम व गुण यहाँ दिए जाते हैं:

1. लेटेंट घाघ—वे घाघ है, जिनमे 'घाघियत' साधारणत: छिपी रहती है: परतु उचित परिस्थितियाँ उत्पन्न होने पर उभर आती हैं। एस व्यक्ति समाज क लिए ख़तरनाक नहीं है वरन् समाज स्वय कभी-कभी उन्हे घाघ होने पर मजबूर कर देता हैं।

2. पेटेंट घाघ—वे घाघ हैं, जो घाघियत को अपना पेशा बना चुक है और इसके लिए ख्याति-प्राप्त है। चूँकि ऐसे घाघ जाने-माने होत है, अत: यदि कोई व्यक्ति चाहे तो उनसे सावधान रह सकता हैं, परतु फिर भी प्राय: ऐसे घाघ अपना उल्लू साधने मे सफल हो जाते हैं।

3. इटेलीजेट घाघ—वे घाघ हैं, जो अपना उल्लू ऐसी सफ़ाई से सीधा करते हैं कि उल्लू बननेवाला व्यक्ति समझ नहीं पाता है कि वह किसी घाघ के चगुल मे है।

4 ब्लेटेंट घाघ–वे घाघ हैं, जो प्रथम मुलाकात में ही स्पष्ट कर देत हं कि वे घाघ है और बद मे ज्यादा बदनाम हैं।

5 जेनेटिक घाघ–इन व्यक्तियों के जीन्स स्वय ही घाघ होते है। इनके जीन्स डार्विन के 'सर्वाइवल आफ फिटेस्ट' के सिद्धात को पूर्णत: आत्मसात किए हुए होते है। इन व्यक्तियों का घाघ बनना इनकी मजबूरी होती है।

6 एक्वायर्ड घाघ–इन व्यक्तियों के जीन्स स्वयं में घाघ नहीं होते हैं परंतु बचपन से ही घाघो के बीच पलने के कारण ये व्यक्ति घाघ बन जाते हैं।

एक शोध के अनुसार आजकल पेटेंट और इटलीजेंट घाघो की संख्या तेजी से बढ़ रही है।

आजकल इस विषय मे राजनीतिक क्षेत्रों मे गंभीर बहस चल रही है कि घाघो को 'फारवर्ड' 'बैकवर्ड' एव 'शेड्यूल्ड' वर्गों में बाँट दिया जाए। सभी प्रमुख दल बैकवर्ड एवं शेड्यूल्ड घाघो-हेतु रिजर्वेशनों का प्रतिशत बढाकर अधिक-से-अधिक घाघो को अपने दलो में मिलाना चाहते हैं, क्योंकि लीडरों को इनसे अच्छे चमचे एवं दलाल, जो उनके 'फ्रेंड', फिलासाफर एव गाइड' भी होते है, नहीं मिल सकते हैं।

इति 'घाघ पुराणम।'

❑

खाना

आदमी खाने के लिए जीता है या जीने के लिए खाता है, यह सवाल उसी तरह टेढ़ा है जैसे दुनिया मे मुर्गी पहले आयी या अंडा। परंतु आवाम में जो कहावते मशहूर है उनसे लगता है कि आदमी की सोच में वह खाने के लिए ही जीता है, इसीलिए कहते है कि 'अगर पेट न होता तो आदमी इतना खटराग क्यों करता', 'पापी पेट का सवाल है', 'ग़रीब के पेट पर लात न मारो', वगैरह-वगैरह। अगर आप गौर फामाएँ तो एक बात तो साफ़ नज़र आएगी कि आदमी चाहे खाने के लिए जीता हो या पीने (शराब) के लिए, लेकिन हमारी घरेलू औरते तो जैसे खाना पकाने के लिए ही जीती है। सबेरे उठकर चाय-नाश्ता तैयार करना और उससे फारिग होते ही दोपहर का खाना बनाना और खा-पीकर जैसे ही पलंग पर पीठ लगायी कि फिर चाय और फिर खाना। आपको यह जानकर ताज्जुब होगा कि बिलानागा इतना रियाज करने के बाद भी औरते आदमियों जैसा पुरलुत्फ़ खाना नही बना पाती हैं। चाहे मुगलों की रसोई के ख़ास खानसामे की बात आए और चाहे आज के फ़ाइव-स्टार होटलों के हेड-शेफ की तारीफ आदमी की ही की जाती है। मैं काफी मशक्कत के बाद इस अजीबोग़रीब पहेली का राज़फाश करने मे कामयाब हो गया हूँ। दरअस्ल, बात यह है कि औरत रोज़ रसोईख़ाने मे खाना बनाने के लिए घुसी तो रहती है लेकिन उसे खाती बहुत कम है (भला कोई हलवाई अपनी मिठाई थोड़े ही खाता है)। खाने का (और पीने का भी) शौक़ीन तो आदमी है, और जो खाएगा वही तो अच्छे-बुरे का फर्क कर

सकेगा। इसलिए अच्छा खाना बनाने का हुनर आदमी मे हो है। इसके अलावा एक वजह और भी है कि खाना पकाना एक कला है और कला होती है स्त्रीलिंग। फिर अच्छी कला को तो आदमी ही अपन पास रखना चाहेगा, औरत को क्या ग़रज पड़ी है सौतन पालने की।

खाना खाना भी एक कला है। मेरी माँ मुझे सिखाया करती थी कि सड़प-सड़प करके मत खाया करो, नही तो ससुराल मे बडी बदनामी होगी। मैंने छोटेपन से सड़प-सड़प करके खाना घर में पले हुए टामी से सीखा था और मैं अपनी आदत में तब्दीली लाने को तैयार भी नहीं होता अगर कुछ बडा होने पर मुझे यह न पता चल जाता कि ससुराल मे सालियाँ भी होती हैं और भला सालियों द्वारा अपनी खिल्ली उड़ाई जाने से कौन मर्द नहीं बचना चहेगा। लगता है दक्षिण के मर्द अपनी सालियो से खिल्ली उडाए जाने से नहीं डरते हैं क्योंकि वे एक हाथ की अजुरी बनाकर और दाल-भात उसमें भरकर ऐसे खाते हैं जैसे कोई फैले हुए कडुए तेल का बोतल में वापस भर रहा हो। यह भी हो सकता कि उन मर्दो की सालियाँ भी खाते समय इसी तरह फैला हुआ तेल बोतल मे भरती हो और तब तो उनके द्वारा खिल्ली उड़ाए जाने का सवाल ही पैदा नही होता है। चीनी भाइयों का खाने का अपना अलग ही अदाज है, जिसे देखकर ऐंट-ईटर (चींटी-भक्षक) भी शरमा जाए। दो तीलियो के सहारे ढेर सारा चावल दो मिनट मे सफ़ाचट कर जाते हैं और मजाल है कि प्याले मे एक भी चावल बच जाए।

खाने के शौक भी तरह-तरह के होते है। किसी को मुर्ग़ा पसद है तो किसी को बटेर। कोई कोर्मा पर लार टपकाता है तो कोई मुसल्लम पर। पर कुछ लोगो में अलग तरह के खाने के शौक भी पाए जाते है। मेरे पड़ोसी शहाबुद्दीन साहब को अपनी दूसरी बीवी की गालियाँ खाने का शौक है, क्योंकि रोज़ रात पता नहीं किस बात पर वह बीवी को इतना नाराज कर देते है कि मुँहअँधेरे ही वह पूरे जोश स उन्हें गालियाँ परोसन लगती है, जिनकी खुशबू मेरे घर मे भी गमकने लगती है। इससे रोज़ सुबह कच्ची नींद जागने से मेरा पारा सातवे अस्मान पर चढ जाता है पर अभी तक मेरी अपने इन पड़ोसी से दुआ-सलाम बंद नही हुई है,

क्योंकि मेरी बीवी को कम खाने और ग़म खाने का शौक है। मेरे गुस्सा होने पर वह भरपूर कोशिश करके मुझे भी थाड़ा-बहुत गम खाने पर मजबूर कर देती है और मैं अपना गुस्सा पी जाता हूँ। इसकी एक वजह और है कि शहाबुद्दीन साहब की पहली बीवी से मेरी बीवी की दॉत-काटी है। एक दिन मैने इन बड़ी भाभीजान को मेरी बीवी से कहते सुना था कि उनकी सौत बडी खसमा खानी है। मैने बाद मे अपनी बीवी से पूछा कि खसम खाने के इस शौक का क्या मतलब है तो उन्होंने बताया, दूसरी बीवी इस शौक़ के बदौलत अपने पहले के दो शौहरो को जहॉबदर करवा चुकी है। होता यह है कि दूसरी बीवी को झूठ बोलने और उस झूठ को सही साबित करने के लिए दूसरों की कसम खाने का बहुत शौक़ है। चूँकि शौहर के इलावा और कोई इतना नज़दीक नहीं मिलता है, इसलिए जब कभी उन्हें किसी गलत बात को सही साबित करने की जरूरत महसूस होती है, तो शौहर के सर पर हाथ रखकर कसम खा लेती है और वह कसम जल्दी ही अपना असर भी दिखा देती है।' हालाकि दूसरी बीवी के इस शौक़ की जानकारी से मुझे खुशी होनी चाहिए थी क्योकि शहाबुद्दीन साहब के ज़िंदा रहने से रोज़ सबेरे मेरी नीद में खलल पडता है, लेकिन मैं एक कमज़ोरदिल इंसान हूँ, इसलिए उस दिन मैं उन्हें इस बारे मे आगाह करने से अपने को न रोक सका कि छोटी भाभीजान को ताकीद कर दे कि शहाबुद्दीन साहब का चाहे वह गालियॉ रोज़ खिलाया करें और उनसे तसल्ली न हो तो जूतियॉ भी खिला दिया करें, पर उनकी कसम न खाऍ। लगता है छोटी भाभीजान ने शौहर की यह बात मान ली है, क्योंकि अब उनके घर से गालियों और कसमों की आवाज़े आना बद हो गई हैं, सिर्फ़ जूतियों की आती है।

❑

अहा ग्राम्य जीवन!

ग्राम्य जीवन के अतिथि-सत्कार, पारस्परिक सौहार्द, पारिवारिक प्रेम और आत्मीयता पर अनेक लेख और उपन्यास आपने पढ़े होंगे। मैंने पढे भी हैं और बचपन में गाँव में रहकर इन्हें देखा भी है।

जहाँ तक अतिथि-सत्कार का प्रश्न है, मेरे घर जब जीजा या फूफा आया करते थे तो उनके लिए दौड़कर आँगन में निवाड़ का पलंग डाला जाता था, जिम पर ऐसे अवसरों के लिए अलग से रखी गई कालीन संदूक़ से निकालकर व उसमें लगी पाव-आधा पाव धूल झाडकर बिछाई जाती थी। कोई पानी लेकर दौड़ता था तो कोई शरबत लेकर। रात को घी मे चुपड़ी रोटी खाने और मलाईवाला दूध पीने के बाद जब वे सोने जाते थे तो मुझे उनके पैर दबाने को कहा जाता था। परतु जब मेरे मामा आते थे, तो वे सबके पैर छूकर सिकुड़े-सिमटे से दरवाजे की दहलीज पर बैठ जाते थे। औपचारिकतावश एक-दो बातें उनसे पूछने के बाद उनसे कहा जाता था, लला, पानी ख़तम हुइ गओ है, एक घड़ा कुऑं से भर लइयो।' और आज्ञाकारी बालक की तरह मामा पानी लाने के लिए घड़ा उठा लेते थे। लौटने पर उन्हे गुड़ के साथ पानी पुरस्कार स्वरूप प्राप्त हो जाता था। रात को सोने के लिए एक गधाती दरी और तकिया देकर कह दिया जाता था, 'छत पर बड़ी ठंडी बयार चल रही है। हुँअई जाय के बिछाय लेउ।' मेरे ताऊ को साधुओं के सत्कार का बडा शौक था, क्योंकि उन्होंने पढ़ रखा था, 'ना जाने किस वेश मे सियाराम मिल जाएँ' यह बात दूर-दूर तक लोगों तक फैल गई थी, इसलिए दूर-दूर

का साधू-सबाधू, चोर-उचक्का, लुच्चा-लफंगा शाम को गेरुआ वस्त्र पहनकर हमारे दरवाजे पर धूनी रमा देता था। मेरे ताऊ उसके चरण दबाते थे और जाते समय दक्षिणा भी देते थे। बस जब वह अंदर उसके लिए खीर-पूड़ी बनाने का आर्डर भिजवाते थे तो ताई खाना बनाते-बनाते साधू महाराज को और ताऊ की अक्ल को निर्बाध गालियाँ देती रहती थी। बानगी के लिए, 'सारो, दुनिया भर को नठया हिंयई आइ के मरत है।'

मेरे गाँव के पारस्परिक सौहार्द की मिसाल दूर-दूर तक दी जाती थी। यह बात अक्सर कही जाती थी कि मानीकोठी (मेरा गाँव) के लोगन मैं इत्तो एका है कि आज लौं कोई बाहर बालो मानीकोठी बालन से जीत कै नाईं लौटो है। जुही एक गाँव है, जहाँ आज लौं डकैतन तक की डकैती डारिबे की हिम्मत नाईं परी है।' मैं भी इस बात से बड़ा प्रभावित था; पर इस बात से भी कम प्रभावित नही था कि मेरे पडोस में रहने वाले मेरे ख़ानदानी बाबा से मेरे घरवालो के अनगिनत मुक़दमे दीवानी-फ़ौजदारी कचहरियों मे चलते रहते थे और प्राय: किसी के परनाले का पानी दूसरे के घर में गिर जाने पर या किसी की बछिया दूसरे के आँगन मे घुस जाने पर दोनों घरों की औरतों मे चुनिंदा गालियां के आदान-प्रदान का सिलसिला आरंभ होता था, जिसमें दूसरे की नाठ हो जाने (वंशनाश हो जाने), बिटिया-बहू की बेइज़्ज़ती हो जाने या बदन मे कीड़े पड़ने जैसी शुभकामनाएँ बिना किसी प्रकार की कंजूसी के प्रेषित की जाती थीं। मेरे इन्ही बाबा के विषय में मशहूर था कि ग़रीब लोगों की लड़की की शादी में अपने बाग से लकड़ी, पुआल, आदि मुफ़्त दे देते थे। यह बात अलग है कि चाहे शादी हो या हारी-बीमारी, जब भी रुपया उधार देते थे, सादे प्रोनोट पर ही अँगूठा लगवाते थे और सिर्फ़ छत्तीस प्रतिशत की दर पर चक्रवृद्धि ब्याज वसूलते थे। साल-दो-साल में उधार लेनेवाला यदि व्याज की किस्त चुकता करने में असमर्थ हो जाता तो मुकदमा करने की धमकी देकर उसकी ज़मीन-मकान भी गिरवी रखवा लेते थे, जो अंत में बाबा की ही हो जाती थी। यदि इसमें भी संतुष्टि न हुई तो अँगूठा-निशानवाले सादे प्रोनोट पर मर्जी के अनुसार उधार की रकम लिखकर कचहरी में पेश कर देते थे। कचहरी को इससे बडा सबूत

और क्या चाहिए?

गाँव के सभी परिवारों में पारस्परिक सौहार्द इस क़दर बढ़ा हुआ था कि हर घर के चूल्हे तक की बात सबको मालूम रहती थी और जाड़े की रात को अगेहना (तापने के लिए अग्निकुंड) के चारो ओर बैठकर घुसर-पुसर होती रहती थी कि आजकल किसकी बहू किससे आँख लडा रही है या किसकी बेटी किससे फँसी हुई है; पर यह मब होता पीठ-पीछे ही था और वह भी सिर्फ ग़रीबों व कमज़ोरो के विषय मे। पारस्परिक प्रेम का इससे बड प्रदर्शन क्या होगा कि किसी के घर में किसी की मृत्यु हो जाने पर गॉव की औरते उसके यहाँ इकट्ठा होकर बुक्का फाड़कर रोती थीं। अगर दूसरे गाँव से ब्याहकर आई नई बहू पूरे जोश से नहीं रो पाती थी तो दूसरी 'औरतें' बाद में ताने मारती थीं, 'हाय, बहू की अम्मा ने जाए रोइबोऊ नाई सिखाओ।'

गॉव में परिवार के अदर के प्रेम से मैं सदा अभिभूत रहा हूँ। दादी, ताई, पिता, चाचा, भाई, भतीजे, पोते सब एक साथ रहते थे। सबका खाना एक चूल्हे पर बनता था और दादी-ताई सब बच्चों को बिठाकर एक साथ कहानियॉ सुनाती थीं। परिवार की सभी अनब्याही लड़कियॉ देवी का स्वरूप समझीं जाती थीं और तीज त्योहार पर पूजी जाती थी। यह बात अलग है कि घर में लड़का पैदा होने पर ढोलक बजती थी और बताशा बँटते थे तथा लड़की पैदा होने पर मुर्दनी-सी छा जाती थी। इसी तरह किसी लडके की मृत्यु हो जाने पर महीनो माहौल गमगीन रहता था और लड़की का क्रियाकर्म करने के तुरंत बाद एक दो मसख़रे धीरे से यह जरूर कह देते थे, 'चलो, पूरे दस हज़ार की डिग्री रद्द हो गई। दहेज के पूरे दस हज़ार बच गए।' मेरी बड़ी भाभी सन् 1945 में ब्याहकर आई थीं। दहेज में अन्य चीजों के अलावा एक ग्रामोफ़ोन, एक सायकिल और एक घड़ी भी लाई थीं, जो इस ज़माने के टी.वी, मोटरसाइकिल और फ्रिज़ से कम नहीं थे। परछन आगमन पर उनकी आरती उतारी गई थी और चूँकि वह बड़ी बहू थीं, जल्दी ही उन्हें घर की सारी जिम्मेदारी सौंप दी गई थी, जिसमें सुबह चक्की से आटा पीसना, झाडू-बुहारू करना, तीनो वक़्त का खाना बनाना और सबको खिलाकर ही स्वयं खाना शामिल था।

मेरी ताई का दिन मे दो-चार बार उन्हे गरिया देना और उनके मॉ-बाप क नीच खानदान की याद दिला देना जन्मसिद्ध अधिकार था। ऐसे अवसरो पर इस अधिकार का उपयोग करन मे घर के अन्य सदस्य भी नही चूकते थे। बेचारे भाईसाहब को और न सही तो कम-से-कम अपनी मर्दानगी दिखाने के लिए सब घरवालो का साथ देना ही पडता था, नही तो वह घर-बाहर सब जगह 'जोरू के गुलाम' मशहूर हो जाते।

मैं हैरान हूँ कि फिर क्यों ढलती वय मे आज मुझे लगता है कि मेरे गॉव में एक जीवत आत्मा थी, जो कभी बागो की बयार-जैसी सनसनाती, पीपल के पत्तो की तरह खड़खड़ाती, कलियों की तरह मुस्कराती, वर्षा की फुहार जैसी बरसनी और हेमत के शीत म्मम किटकिटाती थी। वह शहर के ककरीटों के भवनो के समान निश्चल व हृदयहीन नहीं थी। पता नहीं यह भूत का सत्य है अथवा बाल्यकाल का वृद्धावस्था पर कटाक्ष!

❑

क्लियर फंडा

भारत एक बहुत बडा देश है। इसमें कई बडे और छोटे प्रदेश हैं, जिनका प्रशासन कई प्रकार के बड़े और छोटे नौकरशाह चलाते हैं। सरकारी नौकरी मिलने पर इन्हे नियमानुसार कई बडी और छोटी कसम खानी पड़ती हैं। जैसे संविधान मे आस्था की कसम, ईमानदारी की कसम, निष्पक्षता की क़सम, आदि-आदि। कुछ मूढमगज मनुष्य इन कसमों को बड़े मनोयोग से खाते हैं, और अपने सेवाकाल में इन्हें निभाने का प्रयत्न भी करते हैं। ऐसे नौकरशाहों को घरवाले एवं मित्र प्राय: नालायक अथवा बुद्धू समझते है, और उनके उच्चस्तरीय अधिकारी और मंत्री उन्हे शंका की दृष्टि से देखते हैं। घरवाले नालायक इसलिए समझते हैं कि नियम से काम करने के कारण वे उनको अवैध लाभ अथवा नियुक्तियाँ नही दिला पाते हैं और मित्र एवं हितैषी बुद्धू इसलिए समझते हैं कि आजकल की मारकाट कर आगे बढ़ने की दौड़ में ऐसा स्वविनाशी आचरण कोई सिरफिरा या बुद्धू ही कर सकता है। उच्चाधिकारियो द्वारा इन्हें शका से देखे जाने का कारण सर्वथा स्पष्ट एवं उचित है। ऐसे नौकरशाह चाहे उच्चाधिकारियो के कारनामो में रुकावट डालें या न डाले परंतु सहायक तो नहीं ही होते हैं। पीठ-पीछे उच्चाधिकारी इनके लिए प्राय: कहते है कि अजब 'घनचक्कर' है। अत: शासन मे कार्यरत यह जानवर धोबी का गधा बन जाता है, न घर का, न घाट का ।

सविधान की कसम खानेवाले नौकरशाहों में दूसरी कोटि के वे लोग होते हैं, जिनके 'फडाज' नौकरी के लिए प्रतियोगिता में बैठने के

पहले से ही 'क्लियर' होते हैं। वे जानते और मानते है कि कसमें खाने के लिए होती हैं निभाने के लिए नहीं। वे आरभ से ही 'अपने परिवार, अपने शुभचिंतकों और अपने बॉसो' के सुखो एवं हितों को प्रगति-पथ पर प्रशस्त करने लगते है और अपना इहलोक एव परलोक दोनो सुधार लेते हैं। उनकी बुद्धि, चातुर्य एवं कौशल की हर ओर प्रशंसा होती है और सफलता उनके चरण चूमती है। यदि कभी कोई अपवाद होता भी है तो केवल उपर्युक्त नियम को प्रमाणित करने के लिए। परतु इनके कार्य करने की शैली मे भिन्नता पाई गई है और एक अध्ययन के अनुसार उनकी शैलियों को निम्नलिखित तीन वर्गों में बॉटा जा सकता है--

1 **अकर्मण्यता :**

सरकारी नौकरी में सफलता-हेतु यह शैली कई मामलों में बडी कारगर पाई गई है। इसके लाभ बडे स्पष्ट हैं। यदि कोई कार्य न करने की सुख्याति प्राप्त हो गई, ता 'बॉस' कार्य नहीं देता है और जब काम न किया जावे तो किसी काम के ख़राब होने का दोपारोपण आप पर नहीं किया जा सकता है। जब कोई दोषारोपण न हो, तो कम-से-कम 'म्तोषजनक' 'वार्षिक मन्तव्य' द देना बॉस की नैतिक बाध्यता हो जाती है और 'अयोग्य को छोड़कर सभी को प्रोन्नति' के सरकारी मानदंड के अनुसार प्रोन्नति सुनिश्चित रहती है। परतु चूँकि 'अकर्मण्यता' के सिद्धात पर चलनेवाले नौकरशाहो के पास 'बॉस' और नेताओं से मीठी-मीठी बाते करने एवं उनमें चापलूसी का आवश्यकतानुसार पुट मिला देने-हेतु काफी फालतू टाइम होता है, अत: ऐसे नौकरशाह को प्राय: उत्तम कोटि का वार्षिक मन्तव्य दे देना बॉस की नैतिक बाध्यता हो जाती है। एक अनुभवी नौकरशाह ने यह सूत्रवाक्य प्रतिपादित किया था, 'आपका वार्षिक मंतव्य आपके अपने 'बॉस' से व्यक्तिगत संबंधों का प्रतिबिंब है और इसका आपकी कार्यक्षमता से कोई सरोकार नहीं है।'

इस श्रेणी के नौकरशाह इतने लोभी नहीं होते हैं, जितने कामचोर और वे अपने लक्ष्य को आसानी से प्राप्त कर सुखमय जीवन व्यतीत करते हैं। यदि उच्च पदधारक हुए तो जनता उनकी प्रशंसा मे कहने लगती

है कि राजा आदमी हैं और यदि निम्न पदधारक हुए तो बाबा आदमी से जाने जाते हैं। प्रथम श्रेणी वालो को 'डाली' (प्रजा की राजा को भेंट) की प्राप्ति होती है और द्वितीय श्रेणी वालो को पूजा स्वरूप भेट की प्राप्ति होती रहती है ।

2 निरर्थक-कर्मण्यता :

इस शैली के नौकरशाह सदैव मनोविश्लेषको को शोध-हेतु रुचिकर विषय प्रस्तुत करते रहे हैं। 'ये लोग सदैव व्यस्त दिखाई देते है, फाइलो पर लबी-लबी नोटिंग लिखते है, अपने से निम्नस्तर के कर्मियो को डॉटते-फटकारते रहते हैं, प्रस्तावो का बिदुवार विश्लेषण करके स्पष्टीकरण और आख्याएँ मँगाते रहते हैं परंतु इस सारी कसरत का निहित उद्देश्य होता है कि उन्हें किसी विषय पर स्पष्ट आदेश देने का उत्तरदायित्व न लेना पडे।

ये सरकारी कार्य की प्रगति के सोफिस्टिकेटेड' बाधक हैं। अपनी तगडी 'डिफेंस मेकेनिज़्म' के कारण वे स्वय को सदैव बचाए रहते है ।

इनमे से जो धन-प्राप्ति के प्रकरणो में निर्णय लेने मे झिझकते नहीं है, वे सपरिवार सकुशल रहकर सपन्नता को प्राप्त होते है और जो धन-प्राप्ति के मसलों मे भी निर्णय लेने से कतराते हैं, वे मानसिक एवं आर्थिक दोनों प्रकार के दुखों को प्राप्त करते है। इनके साथ काम करने वाले कर्मी बिना अपवाद के कष्टमय स्थिति को प्राप्त होते हैं।

3 विलंबित-कर्मण्यता :

इस शैली से काम करनेवाले नौकरशाह सबसे अधिक सजग, सफल एव श्रेष्ठतम श्रेणी में आते हैं। इनके ज्ञान-चक्षु पूर्णत: खुले रहते है, क्योकि ये जानते है कि यदि किसी व्यक्ति का कार्य समय से नियमानुसार निपट जाता है तो– 1. वह व्यक्ति उनके पास क्यों आएगा, 2. उनको घास क्यो डालेगा, और 3. उसे क्या कुत्ते ने काटा है जो स्वत: निपट जानेवाले कार्य के लिए उनकी जेब गर्म करता फिरेगा।

इसलिए इनका मूलमंत्र होता है कि पहले फ़ाइल को दबाए रखो

फिर उसमे गर्जमद से पहिए लगवाओ और तभी आगे बढाओ। इन नौकरशाहों के प्रयत्नो से फाइल मे पहिया लगवाना एक फलता-फूलता धधा बन गया है, इसलिए नए उद्यमियो ने पहिए लगाने की कला के 'एक्सपर्ट्स' को 'कन्सलटेट' की उपाधि से विभूपित कर स्थायी आधार पर 'एम्प्लाय' कर रखा है। ये कन्सलटेट्स' सही साइज़ के पहिए हमेशा तैयार रखते है और हर स्टेशन पर उचित साइज के पहिए फाइल मे लगा दते है। इसलिए पहिए लगाने में माहिर लोगो के काम तो आनन-फानन मे निपट जाते हैं और पहिया-विहीन प्रकरणो की फाइलो पर नौकरशाह खुर्राटे लेकर सोते रहते है ।

इस शैली के अपनाने से इन चतुर नौकरशाहो के तन और मन दोनों प्रफुल्लित रहते है। पहिया लगानेवाले उद्यमी इनकी तारीफ़ करते नहीं अघाते है, जिससे ये यश प्राप्त करते है और पहियायुक्त फाइले देखकर उच्चतम स्तर पर भी इनको योग्य और काम का आदमी समझा जाता है। उच्चतम स्तर पर ऐसे नौकरशाह सदैव 'डिमाड' में रहते हैं ।

ये नौकरशाह न सिर्फ अपना, अपने परिवारीजनों, इष्टमित्रों का इहलोक एव परलोक सुधार लेते हैं वरन् आनेवाली सात पीढियों की सुख-सुविधा का पूर्णप्रवध करने के उपरांत ही देश की जनता को त्राण देते है।

❑

'ज़ीरो टौलरेंस बनाम इंफ़ाइनाइट टौलरेंस'

कुछ दिन पहले एक अख़बार मे पढ़ा था कि न्यूयार्क की पुलिस-प्रणाली सीखन (गुप्त उद्देश्य-ठंडी हवा खाने) गई भारतीय पुलिस अधिकाग्यिो की एक टीम को न्यूयार्क के पुलिस कमिश्नर ने 'जीरो टौलग्ेंस पुलिसिग' का सिद्धात सिखाने का प्रयत्न किया था, जिसके अनुसार छोटे-से-छोटे कानून तोड़ने के अपराध को अनदेखा अथवा क्षमा नहीं किया जाता है। उनके अनुसार छोटे अपराधो को अनदेखा कर देने से ही लोगा का हौसला बढ़ता है और वे बडे अपराध करने का साहस करने लगते हैं। उन्होंने बताया कि इसके परिणामस्वरूप न्यूयार्क नगर में हत्या. लूट, बलात्कार-जैसे गंभीर अपराधों में पिछले तीन वर्षो में 30 से 50 प्रतिशत की कमी आई है। उस टीम ने यह भी पाया कि पाश्चात्य देशों मे प्राय: सभी कार्यक्षेत्रों में 'ज़ीरो टौलरेस' का सिद्धात अपनाया जाता है। वहाँ किसी भी व्यक्ति को कार्य सौंपते समय उस पर विश्वास कर उसे उमके समुचित सपादन-हेतु पूर्णत: उत्तरदायी बना दिया जाता है और उसके कार्य करने के दौरान प्राय: कोई 'इटरफियरेस' अथवा 'सुपरविजन' नहीं किया जाता है। उस व्यक्ति से यह आशा की जाती है कि यदि उसे किसी सलाह अथवा जानकारी की आवश्यकता हो, तो वह समुचित स्तर पर स्वय संपर्क करे। दिए गए कार्य में असफल होने अथवा उसमें जानबूझकर कोई गड़बड़ी करने पर किसी प्रकार की दया अथवा क्षमा दिखाने के बजाय उसे कडा दंड दिया जाता है, जो प्राय: सेवाच्युत करने से कम नहीं होता है।

खुदा का शुक्र है कि भारतीय अधिकारी किसी कच्ची मिट्टी के नहीं बने हैं और ख़ूब चिकने घडे है, उन पर पुलिस कमिश्नर साहब की इस 'ट्रेनिंग' का उसी प्रकार कोई 'कुप्रभाव' नहीं पड़ा, जैसा प्रतिवर्ष विभिन्न सेवाओं के विदेशो मे प्रशिक्षण-हेतु जानेवाले सैकड़ों अधिकारियो पर नहीं पड़ता है, नहीं तो यहॉ की पुलिस भी न्यूयार्क पुलिस की तरह जीरो-टौलरेट यानी बेरहम' हो गई होती। मुझे तो लगता है कि सी.आई.ए. या आई.एस.आई. की किसी गुप्त योजना के अंतर्गत न्यूयार्क के पुलिस कमिश्नर हमारे पुलिस-अधिकारियो का 'ब्रेन-वाश' करना चाहते थे, अन्यथा क्या उन्हें यह ज्ञात नहीं है कि भारत एक प्राचीन देश है और सहृदयता, उदारता एव क्षमा के गुण यहॉ की सस्कृति के महत्त्वपूर्ण अग माने जाते है। यहॉ अपनाए जानेवाले सभी धर्मों के अनुयायी अपने-अपने धर्म को अधिक-से-अधिक उदार एव क्षमाशील सिद्ध करने मे गर्व समझते हैं, पाश्चात्य सभ्यता को हेय दृष्टि से देखते हैं और पाश्चात्य देशो में प्रचलित 'ज़ीरो टौलरेंस' सिद्धात के बजाय 'इन्फाइनाइट टौलरेंस' का सिद्धात अपनाते है। यही तो इस देश की महानता है ।

'इन्फाइनाइट टौलरेंस' की परंपरा इस देश की प्राचीन परंपरा रही है और देशवासियों ने इसका सदैव खुले दिल से उपयोग किया है। इस तथ्य को सिद्ध करने-हेतु मैं कतिपय उदाहरण प्रस्तुत करने का साहस इस भरोसे पर कर रहा हूँ कि अपनी अनंत क्षमाशीलता का प्रदर्शन करते हुए सबंधित वर्गों एवं समुदायों के महानुभाव मुझे उनकी 'वेल-डिजर्ड' प्रशंसा करने की इस धृष्टता-हेतु क्षमा कर देंगे।

'समरथ को नहिं दोस गुसाई' में हमारा अटूट विश्वास है और समर्थ के प्रति हम सदैव क्षमाशील रहते है। यदि इंद्र अहिल्या के पति का रूप धरकर उससे सहवास करते हैं तो इद्र को कौन दोषी कह सकता है। वह तो स्वर्गाधिपति है। हाँ, अहिल्या को युगों तक पत्थर बना रहना ही चाहिए, क्योंकि अनजाने में ही सही, एक स्त्री ने ऐसा घृणित कार्य किया है, जिस पर पुरुष-वर्ग का एकमात्र अधिकार है। भारत में रहनेवाले अन्य समुदायों के ग्रथो मे भी ताकतवर के प्रति इस प्रकार की 'अनत क्षमाशीलता' के अनेक उदाहरण उपलब्ध है; परंतु मेरे प्रिय पाठको।

उनका वर्णन कर किसी फ़तवे के तहत जिबह किया जाना मुझे बुद्धिमानी नहीं लगती है।

पृथ्वीराज चौहान द्वारा मुहम्मद गोरी को युद्धभूमि में सोलह बार पराजित कर छोड़ देना हमारी अनत 'क्षमाशीलता' का 'उत्कृष्ट' उदाहरण है, चाहे बाद में उसके लिए पृथ्वीराज चौहान को मुहम्मद गोरी द्वारा अपनी आँखें ही क्यों न फुडवानी पड़ी हों।

इतिहास कहता है कि औरंगजेब द्वारा अपने पिता व भाइयों तथा विधर्मियो के प्रति घोर अत्याचार किए गए, पर हम इस महान देश के वासी इसमे औरगजेब को क्रूर कैसे कह सकते है? आख़िर वह था तो एक बादशाह और उस पर पॉच वक्त का नमाजी भी। अँग्रजो के प्रति हम न केवल क्षमाशील हैं वरन् कृतज्ञ भी हैं, क्योंकि उन्होंने हमे आधुनिक क़ानून, सभ्यता एवं शिक्षा तथा तकनीक से परिचित कराया। यह बात अलग है कि व्यावहारिक रुप में यह क़ानून गोरों के लिए पूर्णतः भिन्न था, सभ्यता केवल गोरों के पिट्ठुओं-हेतु थी और शिक्षा तथा तकनीक का विस्तार ब्रिटेन के हित-साधन तक सीमित था।

हमारी जनता मे उदारता की अपार क्षमता है। जैसे सत्तापक्ष यदि आज किसी व्यक्ति के विरोधीदल मे होने पर उसके काले कारनामो की जॉच बिठाता है अथवा चुपचाप पुलिस का उसका 'एन्काउंटर' करने का हुक्म देता है और कल उसके पाला बदलकर सत्तापक्ष मे आ जाने पर उसे मत्री बना देता है, तो जनता सत्तापक्ष के इस तर्क को बिना हिचक स्वीकार कर लेती है कि जब तक किसी व्यक्ति को न्यायालय अपराधी घोषित न कर दे, तब तक कल के घसियारे को आज करोड़ों का मालिक बन जाने से अथवा उसके विरुद्ध पुलिस-रिकार्ड मे दस-बीस हत्या-अपहरण के मामले दर्ज़ होने से वह मंत्रित्व के अयोग्य नहीं हो जाता है। देश के नेताओं के विचार इस विषय मे और भी स्पष्ट हैं कि ये तो मूल अर्हताएँ है, जिनके बिना कोई सफल नेता हो ही नहीं सकता।

यदि समाजवाद की दुहाई देनेवाला व्यक्ति यह कहे कि दस करोड प्रतिवर्ष 'टर्नओवर' के उद्योग का मालिक पिछड़ा व ग़रीब है और शासकीय नियुक्तियों में लाभ उसे मिलना चाहिए, न कि रमुआ किसान

अथवा ललुआ मजदूर को, तो हमारे विचार में यह तर्क न केवल स्वीकार्य है वरन् उस व्यक्ति के उदार हृदय का परिचायक भी है।

बेईमान अधिकारियो को कमाऊ स्थानो पर नियुक्त किए जाने का कारण तो कोई सिरफिरा भी समझ सकता है। फिर मै यहाँ इस विषय पर मगजपच्ची क्यो करूँ? भारतीय जनता एव लीडरान मे इस विषय पर कोइ मतभेद नहीं है कि कमाऊ पूतों के प्रति 'इन्फाइनाइट टौलरेंस' दिखाओ और 'खाओ और खाने दो'। बस ईमानदारों का जीना हराम रखो।

चूँकि हमारा दृढ विश्वास है कि पाश्चात्य सस्कृति हमारी सस्कृति की विनाशक है, अत. हम शासकीय सेवाओ क क्षेत्र मे पाश्चात्य प्रक्रियाओ, व्यवस्थाओं और मान्यताओं के ठीक उल्टी कार्य-संस्कृति अपनाकर अपनी श्रेष्ठता की रक्षा कर रहे हैं। उदाहरणत: हम किसी कर्मचारी की योग्यता और ईमानदारी पर विश्वास नहीं करत हं और हर कर्मचारी के कार्य म दखलदाजी करने के लिए एक पर्यवेक्षक अधिकारी नियुक्त करते हैं। इसका प्रत्यक्ष लाभ यह होता है कि पर्यवेक्षकों की सख्या काम करनेवालों की संख्या से अधिक रहती है और काम ख़राब होने पर कोई कभी भी स्वयं को उत्तरदायी नही अनुभव करता है। हमन सोच-सोचकर ऐसी व्यवस्था बनायी है कि किसी व्यक्ति-विशेष का उत्तरदायित्व सुनिश्चित न हो जाए, जैसे जनपद में पुलिस-विभाग का काम यदि पुलिस-अधीक्षक का है तो उसके काम में दखलदाजी का अधिकार जिलाधिकारी को भी है। इसका एक ही लाभ है कि नगर म दगा या अन्य अव्यवस्था हो तो दोनों अधिकारी एक-दूसरे की गलतियॉ छिपाकर अथवा एक-दूसरे के सिर पर दोष मढ़कर साफ़ बच जाते हं और इस प्रकार हम किसी को दोषी सिद्ध न करके अपनी अनत क्षमाशीलता प्रमाणित करने में सफल रहते हैं ।

यदि कोई अधीनस्थ कर्मचारी कोई दंडनीय कार्य करता हं और जॉच करनेवाला अधिकारी उसे दंड दिलाने की 'दुरूह एव रिस्की' प्रक्रिया से गुजरने का साहस करता ह तो दंड देने-हेतु सक्षम अधिकारी को दंड देने से पूर्व उस कर्मचारी की जाति, धर्म बाल-बच्चों अथवा कमाऊपन का ख़याल अवश्य करना पडता है और यदि वह इन सबस

ऊपर उठकर उसे दड दे भी देता ह तो उच्चतर स्तर पर अपील और शासन में रिवीज़न के समय काम बन जाता है। यदि इन स्थानो पर भी कोई 'सोर्स' न लग सका, ता ट्रिबुनल, न्यायालय और उससे ऊपर क न्यायालय कहॉ गए हैं! कहीं-न-कहीं 'रिलीफ' मिल ही जाती है। इस देश के कर्मचारियो का दृढ विश्वास है कि यदि ख़र्च करने के लिए पर्याप्त धन कमा लिया गया है ता किसी-न-किमी स्तर पर 'उदारहृदय' निर्णायक से 'रिलीफ' अवश्य मिल जाएगी। वैसे इतने झझट मे पड़ने की नौबत कम ही आती है, क्योंकि कोई ईमानदार एवं निरीह कर्मी ही किसी उच्चाधिकारी को इतना मौक़ा देता है कि उसके विरुद्ध कार्यवाही पूर्ण कर सके। प्राय: उसके पहल ही उस अधिकारी का बोरिया-बिस्तर बँधवा दिया जाता है। अपने पैसों के ज़ोर से किसी उच्च अधिकारी का स्थानांतरण किसी-न-किसी भारी-भरकम नेता की प्रतिष्ठा का प्रश्न बनवा देना कोई कठिन काम नहीं है। पैसेवालों के प्रति उच्चतम स्तर पर भी हम अपनी 'टौलरेंस' दिखाने मे कभी भी कजूसी नहीं करते हैं।

ब्रिटिश क़ानून के अंतर्गत माना जाता है कि चाहे निन्यानव अपराधी छूट जाएँ, एक निर्दोष को दड नहीं मिलना चाहिए। हमारी 'इन्फाइनाइट टौलरेंस' की कानून-व्यवस्था की मान्यता है कि कम-से-कम नौ सौ निन्यानवे अपराधियो को छोडने के बाद ही एक व्यक्ति को दडित करने की बात सोची जा सकती है। चौकिए नहीं। इसको साधारण गणित से प्रमाणित किया जा सकता है। हमारे देश मे घटित एक हजार अपराधा मे लगभग आठ सौ अपराधो में पुलिस इसलिए कार्यवाही नही करती है, क्योकि वे असज्ञेय है और कानून उनमें पुलिस को हस्तक्षेप करने का अधिकार ही नही देता है। जैसे यदि आप किसी को सौ जूते मारें पर हड्डी न टूटने दें, तो पुलिस इस अपराध का सज्ञान नही ले सकती है। शेष दो सौ मे सौ ऐसे होते हैं, जिनमें अपराध से पीडित व्यक्ति अपनी अथवा अपनी बहू-बेटी की इज़्जत का ख़याल कर, या अपराधियो के भय से, या पुलिस के भय से, अथवा कचहरी मे झेलनेवाली जहमत बेइज़्ज़ती एवं उसकी निरर्थकता को सोचकर थाने में रिपोर्ट ही नही लिखाते है अथवा उनकी रिपोर्ट लिखी ही नही जाती है। शेष सौ मे रिपोर्ट

लिखाने के बाद मुश्किल से बीस-पच्चीस में पुलिस सही अपराधी का पता लगा पाती है और केवल आठ-दस में उस पर अभियोग चलाने लायक साक्ष्य इकट्ठा कर पाती है। दस-पाँच साल की कसरत के बाद इनमे से एक-आध मे ही अपराधी दडित हो पाता है। इस प्रकार नौ सौ निन्यानवे अपराधियो के प्रति हम अपनी पूरी क्षमाशीलता दिखाने के बाद ही एक को दडित करते हैं, बशर्ते उसके पास आगे अपील कर जमानत कराने का ख़र्चा-पानी न हो ।

मुझे दृढ़ विश्वास है कि हम अपनी उच्चकोटि की सस्कृति का पाश्चात्य दुष्प्रभावों से बचाए रखने-हेतु पूर्व की भाँति चैतन्य रहेंगे और अपनी 'टौलरेंस-लिमिट्स' को यथासभव बढाते रहेंगे। तभी तो हमारा भारत महान रहेगा न?

❑

खोटी अठन्नी का मलौटा

मलौटे को तो फूटना ही था, क्योंकि वह खोटी अठन्नी से ख़रीदा गया था। भला खोटे सिक्के को धोखे से चलाकर ख़रीदी चीज़ साबुत रह सकती है और वही हाल मलौटे का हुआ। वैसे मलौटे के फूटने की सिर्फ यह गैबी (दैवीय) वजह ही नहीं थी, बल्कि मलौटा इसलिए भी फूटा था कि–

(अ) मलौटा मिट्टी का बना था।

(ब) मलौटा मड़हा (कमरा) के दरवाज़े की दहलीज के पास रख दिया गया था और

(स) उस दहलीज को काम के सिलसिले में बार-बार करना बड़ी (घर की एकमात्र बहू जो सबसे बड़े बेटे को ब्याही थी) की मजबूरी थी।

मुख़्तसर में बात इतनी हुई थी कि मुँह-अँधेरे चारपाई से उठकर बड़ी मड़हा में रखे कुठिया से मक्का निकालने गई थी, जिसे सबेरे-सबेरे चकिया पर पीसकर उन्हें घर-भर की रोटी बनानी थी। मक्का से भरी डलिया लेकर चौखट लाँघते समय उनका बायाँ पैर मलौटा में टकरा गया और चोट खाया मलौटा जब अपने स्थान से भागने को हुआ, तो लकड़ी की मोटी शहतीर की बनी दहलीज से टकराकर टुकड़े-टुकड़े हो गया था। मलौटे को भी बड़ी से ही टूटना था। वह बहरी अम्मा (दादी) के पैर से भी टूट सकता था या फिर अंधी ताई के पैर से लड़ सकता था, नहीं तो हलबला कर जल्दी-जल्दी चलनेवाली जिज्जी (घर की बड़ी बेटी) के पैर से टूट सकता था नहीं तो विनय और उसके दादा (उससे बड़े भैय्या)

कौन कम सिलबिल्ला थे कि ऐसे सधकर चलते हो कि उनके पैरों से न टूट सके। पर खोटी अठन्नी से खरीदा मलौटा अपना खोट दिखा ही गया। वह बड़ी के ही पैर से टूटा।

हुआ यूँ था कि बड़ी के दो देवर विनय और दादा, जो अभी तक छोटे और अनब्याहे थे, तीन दिन पहले दोबा का मेला देखने गए थे। जाते समय उन्हें मेला में ख़र्च के लिए एक-एक अठन्नी दी गई थी। उन दिनों अठन्नी का मूल्य कम नहीं होता था, क्योंकि जलेबी एक आना की एक छटाँक आ जाती थी और मूँगफली आधा पाव। उनके गाँव से दोबा आठ मील दूर था पर दूसरे मेलहारों के साथ वे हँसते-खेलते आठ मील चले गए थे– भला मेला जाने मे भी कोई थकता है। हाँ मेला मे पहुँचते-पहुँचते रात हो गई थी और दोनो को भूख भी खूब लग आई थी। मेला में घुसते ही खाजा की एक दुकान दिखाई दी, जिस पर हंडा (पेट्रोमैक्स) झकझकाकर जल रहा था, पर खाजा ख़रीदने की उनकी हिम्मत नहीं हुई। आगे लाल इमली के गर्म कंबलवालों, इटावा के असली घी वालों मुरादाबादी पीतल के बर्तन वालों और अलीगढ़िया चाकूवालों की दुकानें थीं। उनके आगे मूँगफली का एक ठेला दिखाई दिया, जिस पर एक ढिबरी जल रही थी। दो पाव मूँगफली लेकर मूँगफली वाले को अठन्नी पकड़ाने पर वह पहले उसे हाथ के अँगूठे व तर्जनी में फँसाकर सहलाता रहा, फिर ढिबरी की लौ के पास ले जाकर बोला, 'यह तो खोटी है।' और अठन्नी वापस कर दी। मजबूरन उन्हे दूसरी अठन्नी देनी पड़ी। अब बचे सिर्फ चार आने, जो दोनों की भूख मिटाने-भर को भी काफ़ी नही थे–मेले के और ख़र्च की बात तो अलग। पर मेले मे एकआध जगह और प्रयत्न करने पर भी खोटी अठन्नी न चल पाई, वरन् दूकानदारों की उल्टी-सीधी बातें भी सुननी पड़ीं। पर उन्होंने अपने गाँव के मुरारी चाचा और कढ़ोरे बाबा आदि से उनके द्वारा जाली नोट या खोटे सिक्के किसी अनजान या बुद्धू दुकानदार के यहाँ चला देने के उनकी होशियारी के कई क़िस्से सुन रखे थे। इसलिए वह भी ऐसे ही दुकानदार की तलाश में घूमते रहे। जैसी कि कहावत है 'जिन खोजा तिन पाइयाँ, गहरे पानी पैठ', उसी के अनुसार उन्हें भी मेले के एक किनारे पर मिट्टी के बर्तन

बेचनेवाली एक कुम्हारिन बुढिया मिल गई। उसकी ढिबरी मे तेल कम होने के कारण ढिबरी बहुत हल्के-हल्के जल रही थी और वह उसे देखकर समझ गए कि इसकी आँखें भी कमजोर होगी। दादा ने आगे बढकर एक बड़े से मलौटा की ओर इशारा करते हुए पूछा, 'यह कितने का है?' वह कुम्हारिन मलौटे को ध्यान से देखकर बोली, 'अठन्नी का'। दादा ने मोल-भाव करना ठीक नहीं समझा और जेब से निकालकर खोटी अठन्नी थमा दी। बुढिया ने अपने रतौंधी वाले नेत्रों से उसे देखा और अठन्नी अपनी धोती के छोर में बाँध ली। हो सकता है कि वह मन-ही-मन मुस्कराई थी हो कि बच्चे हैं, मोल-भाव करना नहीं आता, इसीलिए छः आने का मलौटा अठन्नी में लिए जा रहे है. पर वे दोनो 'बच्चे' मलौटा उठाते समय अवश्य ही मुस्करा रहे थे कि खूब चलाई अठन्नी। मुँह-अँधेरे ही वह लोग दूसरे मेलहारों के साथ वह मलौटा लेकर अपने घर वापस चल दिए। रास्ते में उसे कभी विनय सर पर लादता, कभी दादा। घर पहुँचते-पहुँचते बदन लस्त हो रहा था और मर पस्त।

अब सवाल उठता है कि टूटा मलौटा एक सा चाहे वह किसी के भी पैर से टूटा हो, तो फिर बड़ी के पैर से ही टूटने में क्या खोट हो गई? जवाब है कि बड़ी के पैर से टूटने में घर में सबको कोहराम मचाने का एक मुद्दा मिल गया कि हाय कितनी मुश्किल से खोटी अठन्नी चलाकर और कितनी मशक्कत से लादकर लड़के मलौटा लाए थे और बेम्हूर (बेशऊर) बड़ी ने उसे तोड़ दिया। बड़ी पर हर तरफ़ से इल्जामो की बौछार होने लगी, जिनमें कुछ छँटे इल्जाम उनके माँ-बाप व खानदान तक के नाम पेश किए गए।

बहरी अम्मा आँखो पर मोटा चश्मा चढ़ाकर मलौटा के टुकड़ो का सूक्ष्म निरीक्षण करते हुए बोली, 'हाय कुलच्छिनी, तुम्हारी अम्मा ने तुम्हे यही सहूर सिखाया था और फिर इस घर का नाश करने हमारे यहाँ पटक दिया। आने दो लला (बड़ी के पति) को, जो तुम्हारे ऊँट जैसे पॉव कटवा के न रख दूँ. ।' अंधी भौजी की छठी इंद्रिय बहुत चुस्त थी, वह दहलीज से खटाक की आवाज़ सुनकर ही चौकन्नी हो गई थी कि हो न हो, बडी ने मलौटा तोड दिया है और अम्मा की बात पूरी होने से पहले ही वह

सर पीटने लगी, 'हाय, कैसी नासपीटी बहू आई है इस घर में। जाने कब तक हमारी छाती पै मूँग दलेगी ... मर-बह जाए तब भी छुटकारा मिले।' जिज्जी अपनी आदत के अनुसार झाड़ू लेकर तनफनाती हुई मलौटे के टुकड़े साफ करने दौड़ी और उनके मुँह से अनवरत बडे-बड़े विशेषण निकलने लगे। लाछनों एवं अवांछनीय विशेषणों पर अपनी प्रतिक्रिया व्यक्त करने का अधिकार बड़ी को नहीं था। ऐसा करना तो इस घर की अस्मिता और घर की परंपराओं को भग करना होता और ऐसा अधिकार देने से घर के अन्य सदस्यो की बड़ी के विरुद्ध लामबदी निष्फल हो जाती। बडी को लगभग प्रतिदिन अपनी व अपने खानदान की इस अनुचित प्रशंसा-हेतु इस प्रकार के विशेषण सुनने को मिलत थे। उन्हे चुपचाप अपने आँसू पीकर सहते रहने का पुख़्ता अभ्यास भी हो चुका था।

इस दैनिक क्रिया के दौरान वह कभी-कभी विनय अथवा दादा (अर्थात् अपने दोनो देवरो) के चेहरो पर उनके प्रति थोड़ी-बहुत सहानुभूति का आभास अवश्य पा जाती थीं, जो हो सकता है कि उनकी घुटन को कभी-कभी कुछ सहने-लायक बना देता हो। पर आज तो उन दोनों के चेहरे भी खोटे हो रहे थे। आखिरकार वही तो खोटी अठन्नी का मलौटा लाए थे।

❑